ISSN : 2321-3922
जनवरी– 2015

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.net

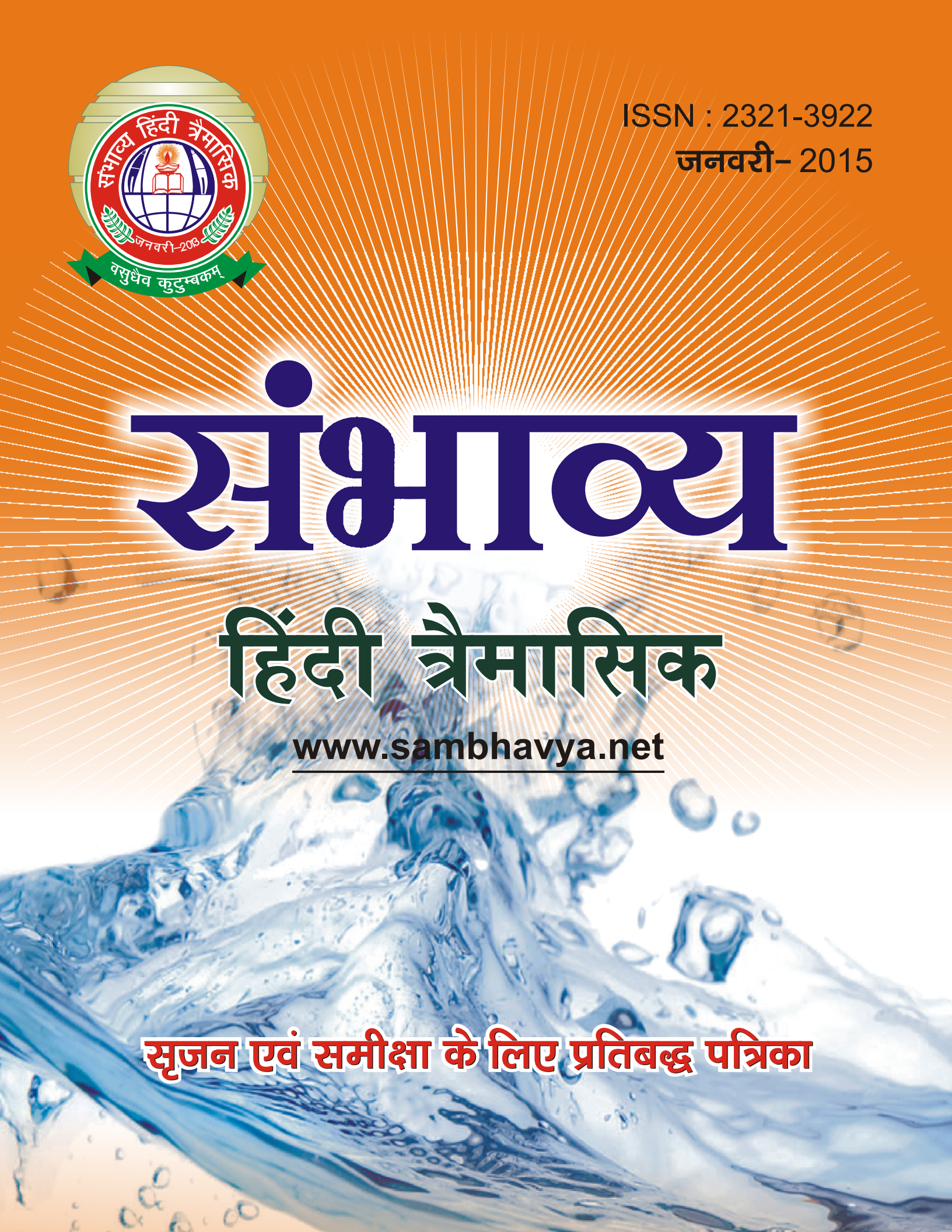

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

ISSN - 2321-3922

संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–2015

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्री मती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक
डॉ. अश्विनी
डॉ. जी.पी. सिंह

संस्थापक सदस्य
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

विशिष्ट सदस्य
श्री अजय कुमार सिंह
श्री धनञ्जय प्रसाद मण्डल 'अजित'
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्री शिवनन्दन सिंह
श्रीमती छाया पाण्डेय

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 09570838880
वेबसाईट : www.sambhavya.net
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.sambhavya.net

आमंत्रण

'संभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः नि:शुल्क हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 48 देशों के पाठक सहित भारत के 80 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.sambhavya.net पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल–2015 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार के पता के साथ मेल करें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

डॉ0 जी.पी. सिंह
संपादक, संभाव्य

डॉ0 अश्विनी
संपादक, संभाव्य

संभाव्य

ISSN - 2321-3922

अनुक्रम

1	प्ररोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
2	समीक्षा	आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक अवदान यह व्यवस्था है	डॉ0 अवधेश कुमार चन्सौलिया	6
3	आलेख	भूमण्डलीकरण के दौर में मुन्शी प्रेमचन्द	छोटे लाल गुप्ता	8
4	आलेख	हिंदी साहित्य में संस्कृत काव्यशास्त्र की भूमिका	डॉ० रमा प्रकाश 'नवले'	11
5	आलेख	आधुनिक कथा साहित्य की बदलती प्रवृत्तियाँ	सुनिल कुमार परीट	13
6	कविता	माँ	संयुक्ता गुप्ता	15
7	समीक्षा	सभी दे रहें आबाद	राहुल देव	16
8	कविता	समय बहुत खराब है	डॉ0 गिरिजा शंकर मोदी	17
9	समीक्षा	छायावाद : युग बोध	दयानन्द जायसवाल	18
10	कहानी	दुंदुभी बजने लगी	धर्मेन्द्र कुसुम	21
11	कविता	बारिश की बूंदें	नताशा	23
12	कहानी	चेहरे	नसीम साकेती	24
13	कविता	सीख लिया...	बच्चू चौधरी अकेला	28
14	गजल	मुल्क की खातिर	अभिनव अरूण	29
15	गजल	दरकते देखना	अनिल मिश्र	29
16	जगल	सवाल चाहिए	दिनेश तपन	30
17	कविता	भारत की आशा 'युवा'	नवनीत	30
18	कविता	अदभुत प्रीति	रजनी मोरवाल	31
19	कविता	उड़ान	संजय वर्मा ''दृष्टि''	31
20	कविता	और भी...	संजय सहाय	32
21	कविता	तेरे शहर से मेरा गाँव अच्छा है	अनामिका सिंह,	32
22	कविता	संकल्प/प्रतीक्षा में संस्कृत में अनूदित कुरआन	अनिरूद्ध प्रसाद विमल	33
23	लघुशोध	'सांस्कृतम् कुराणम्' का समीक्षात्मक अध्ययन	राजेश सरकार	34
24	आलेख	वर्त्तमान का स्थिति बोध/ (यह व्यवस्था है कविता– पृ०–7)	डॉ0 अश्विनी	38
25	कहानी	नदी का तीसरा किनारा	अनुवाद : सुंशात सुप्रिय	41
26	आलेख	बदलते रिश्ते	डॉ0 भावना शुक्ल	45
27	लोकवाणी	लोकवाणी		47

चाहे जो भी फसल उगा ले,
तू जलधार बहाता चल।
जिसका भी घर चमक उठे,
तू मुक्त प्रकाश लुटाता चल।
रोक नहीं अपने अन्तर का,
वेग किसी आशंका से,
मन में उठें भाव जो, उनको
गीत बनाकर गाता चल।

❁❁❁

तेरे उर का कसक हाय,
तेरे मन का आनन्द हुई,
इन आँखों की अश्रुधार ही,
तेरे हित मकरन्द हुई।
तू कहता 'कवि' मुझे, किन्तु,
आहत मन यह कैसे माने?
इतना ही है ज्ञात कि मेरे
व्यथा उमड़कर छन्द हुई ।

दिनकर (द्वन्द गीत)

पुरोवाक्

संस्थापक की कलम से

आधुनिक ज्ञान– विज्ञान ने मनुष्य को बहुत कुछ बुद्धि – सम्मत बना दिया। बौद्धिक जगत में एक क्रांतिकारी परिवर्तन भी ला दिया, पर यथार्थ का स्वरूप ही बदल गया। अच्छे बुरे की जो कसौटियाँ थीं, उनकी प्रामाणिकता समाप्त हो गयी पुराने मूल्य विघटित हो गये। न कोई सार्वभौम सत्य ही रहा और न तो शास्वत नैतिकता। जिस पर अस्तित्ववादी दर्शन ने उस पर अपनी मुहर लगाकर और भी पुष्ट कर दिया। उनकी दृष्टि में मनुष्य स्वतन्त्र है तथा वह क्रियात्मक शक्ति है। वह स्वतन्त्र निर्णय लेने में समर्थ है और इसके लिए वह खुद जिम्मेदार है। इन अस्तित्ववादी विचारों का प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ा है, किन्तु साहित्य परंपरागत रूपों को तोड़ने का प्रयास नहीं है बल्कि इन रूपों में भी परिस्थिति जन्य बाधाओं से लड़ने की चेतना उत्पन्न करता है। बदलाव, संघर्ष और सार्वभौमिकता के लिए हमें सचेत करता है।

मानवीय मूल्यों की दृष्टि से साहित्य में युग निरपेक्ष उत्कर्ष की स्थिति दिखायी देती है। तात्कालिन सामाजिक – राजनीतिक उद्देश्य ही साहित्य में अभिव्यक्त नहीं रहते, बल्कि इनमें मानव–जीवन को शक्ति प्रदान करने वाले साम्य, साधना, न्याय, स्वाधीनता, आदि सामान्य मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की जाती है। इसमें मनुष्य का व्यावहारिक धर्म, इमानदारी, दायित्व की भावना जो अमानवीय ढ़ाँचे के भीतर भी मनुष्य के आपसी रिश्तों में मानवीयता संभालकर रखे जाते हैं। साहित्य की रचना समाज के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। हममें सच्चा संकल्प और कठिनाईयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता उत्पन्न करती है।

आज चारों ओर हाहाकार और युद्ध की विभिषिकाएँ सुनने को मिल रही हैं। बड़े बड़े कूटनीतिज्ञ अहर्निश इसी बात के चिन्तन में रहते हैं कि किस प्रकार अन्य राष्ट्रों को नीचे दिखाया जाय। विश्व की शिराओं में प्रकम्पन की लहर उत्पन्न हो रही है। अनतर्राष्ट्रीयता की भावना भूलकर प्रत्येक राष्ट्र अपने–अपने स्वदेश की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं।

साहित्यकार आज भी अपनी अन्नत साधनाओं , तपस्याओं और सृजनशीलता से विश्वग्राम को सजाने व संवारने में लगे हैं। ये नीति, दर्शन एवं कला का संगम प्रेम और आशा से भरी हुंई पावन सरिता प्रवाहित कर अपनी लोक कल्याणकारी कृतियों की वेगवती इस धारा में समाज की कुरीतियाँ को धोने में लगे हैं। आप जानते हैं हमारे मानसिक महल में कई बरामदे हैं, सारी ज़िन्दगी हम लोगों से उन्हीं बरामदों में मिलते हैं, परन्तु बरामदे के पीछे जो आत्मा का कक्ष है, उसमें हम किसी को भी नहीं ले जाते। एक खास तरह की वाक्पटुता, एक खास तरह की व्यवहार कुशलता , एक खास तरह की चतुरता और नकली नैसर्गिकता के चूने से पुती हुई एक विशेष प्रकार की बनावट ही आज हमारी विशेषता बनती जा रही है । निःसंकोच कह सकते है कि साहित्यकार इसे सुगढ़ करने में, इसके अन्तर्निहित सौन्दर्य को दर्शाने में, सभ्यता संस्कृति की रक्षा में अपनी पूरी ज़िन्दगी लगा देते हैं।

'संभाव्य' में रचनाकारों ने समय की शिला पर उरेही गई पंक्तियों से वातायन की तैरती परिस्थितियों की ऐसी छाप छोड़ी है जिसका विचार समाज–सागर में डूबती –उतराती दूरियों के विरूद्ध उठाया गया सुन्दर दर्शन है।

स्नेहाकांक्षी यह 'संभावव्य परिवार' संभाव्य' हिन्दी त्रैमासिक के साथ आज तीसरे वर्ष में प्रवेश कर गया है। यह आप सबों के उत्साहवर्द्धन का प्रतिफल है।

नव वर्ष की शुभ कामनाओं के साथ आप सहृदयों को यह अंक समर्पित कर रहा हूँ।

–आभार

समीक्षा

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक अवदान

डॉ0 अवधेश कुमार चन्सौलिया
242 दीनदयाल नगर
ग्वालियर 4744005 म0प्र0

आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य के निर्माण में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रमुख स्थान है। हिन्दी साहित्य के निर्माण का यह कार्य उन्होंने 'सरस्वती' के सम्पादन के माध्यम से किया। जनवरी 1903 ई0 से द्विवेदी जी इस गौरवशाली पत्रिका के सम्पादक नियुक्त हुए। भारतेन्दुयुग के लेखक गद्य, खड़ी बोली में तथा कविताएँ ब्रज भाषा में लिखा करते थे। द्विवेदी जी ने खड़ी बोली में कविता लिखने को प्रोत्साहित किया। उन्होंने पत्रिका के माध्यम से हिन्दी भाषा का परिष्कार कर , उसके व्याकरण सम्मत रूप को स्थित किया। अनेक लेखकों ने द्विवेदी जी से और सरस्वती से हिन्दी भाषा सीखें। निराला जी ने स्वयं कहा है कि उन्होंने सरस्वती से हिन्दी भाषा सीखी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में द्विवेदी जी के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखा है, कि '' यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित, व्याकरण विरूद्ध और ऊट –पटांग भाषा चारों और दिखाई पड़ती थी, उसकी परम्परा जल्दी न रूकती। उनके प्रभाव से लेखक सावधान हो गये और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी उन्होंने अपना सुधार किया।''

सरस्वती पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दी को अनेक लेखक, कवि, आलोचक और अनुवादक दिये। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट, कामता प्रसाद गुरु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि प्रमुख हैं। वे लेखकों को मौलिक रचनाओं के साथ–साथ अनुवाद के लिए भी प्रेरित करते थे। अनुवाद के द्वारा वे अपने पाठकों को अन्य भाषाओं के साहित्य से परिचित कराना चाहते थे। स्वयं द्विवेदी जी ने बेकन, जॉन स्टुअर्टमिल तथा हर्बर्ट स्पेंसर आदि अंग्रेजी लेखकों की रचनाओं के साथ–साथ संस्कृत और मराठी की पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किये। इसका कारण यह है कि वे हिन्दी को सिर्फ हिन्दी प्रान्तों तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे बल्कि हिन्दी का अखिल भारतीय स्वरूप विकसित करने के पक्षपाती थे।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य को मात्र मनोरंजन का साधन नहीं स्वीकारते। वे ज्ञान के प्रचार–प्रसार को साहित्य का मुख्य कार्य मानते थे। इसलिए उन्होंने सरस्वती में शुद्ध साहित्य के साथ साथ अपने समय की गम्भीर समस्याओं को रेखांकित करने वाला साहित्य भी प्रकाशित किया। उसमें इतिहास , समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, धर्म, पुराण, विज्ञान आदि से संबंधित जानकारी उल्लेखनीय थी। यदि किसी अन्य भाषा में नवीन जानकारी से युक्त खोज प्रकाशित होती थी तो द्विवेदी जी उसे सरस्वती में अवश्य छापते थे।

साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी की सबसे महत्वपूर्ण देन उनकी आलोचना है। उन्होंने हिन्दी साहित्य को आलोचना का विषय बनाया और अपनी आलोचना के माध्यम से उसमें नवचेतना के प्रसार के लिए अथक प्रयास किया। द्विवेदी जी जनवादी लेखक थे, इसलिए उन्होंने हिन्दी के नवीन साहित्य को देश तथा समाज की परिस्थितियों से जोड़ने पर बल दिया और उसमें जो सामंती प्रवृत्तियां शेष थीं, उनके विरुद्ध तीखा संघर्ष चलाया द्विवेदी जी का एक आरंभिक लेख है 'हिन्दी भाषा और उसका साहित्य' इसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में नायिका भेद और रीति निरूपण वाली परम्परा को छोड़कर नये प्रकार के साहित्य की रचना की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि नायिका भेद और रस तथा अलंकार के विवेचन से पूरित पुस्तकों की इस समय आवश्यकता नहीं है। वे जोर देकर लिखते है कि ''इस समय अंग्रेजी का साहित्य अत्यंत उन्नत दशा को प्राप्त है। अतएव हमें चाहिए कि उस भाषा के अच्छे–अच्छे ग्रंथों का अनुवाद करके हिन्दी के साहित्य की दशा को सुधारें। इस समय विज्ञान, इतिहास, यात्रा वर्णन , जीवन चरित और समालोचनाओं की हिन्दी में बड़ी भारी न्यूनता है। इस न्यूनता को पूरा करना हिन्दी वालों का परमधर्म है।''

द्विवेदी जी ने कविता में खड़ी बोली के प्रयोग हेतु एक जोरदार आंदोलन चलाया। खड़ी बोली का पक्ष वे समाज की नयी स्थिति और नयी आवश्यकता को ध्यान में रखने के कारण ले रहे थे। कविता में विषय के अनुकूल शब्द स्थापना के साथ– साथ उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि उसमें शब्दों को यथा स्थान रखना चाहिए। रसज्ञ रंजन के एक लेख में वे कविता में अर्थ चमत्कार को महत्व देते हैं और रस को काव्य का बड़ा गुण बताते हैं।

द्विवेदी जी ने नाटक और उपन्यास लेखन पर भी अपने

विचार प्रकट किये हैं। साहित्य और जनसाधारण के संबंध को सुदृढ़ करने में वे नाटक की भूमिका को सर्वोपरि मानते थे साथ ही नाटक और अभिनय के मध्य वे घनिष्ठ संबंध स्वीकारते हैं। वे उपन्यास को जातीय जीवन का मुकुट बताते हुए कहते हैं कि उपन्यास की कथावस्तु को चरित्र से जोड़ना चाहिए और उसके लिए मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है।

द्विवेदी जी की रूचि विशिष्ट व्यक्तियों की जीवनियाँ लिखने में थी। उन्होंने जहाँ कहीं जिस किसी व्यक्ति में कोई विशिष्टता देखी, अपने पाठकों को उससे परिचित कराना आवश्यक समझा। जीवनियों में उन्होंने भरपूर तटस्थता प्रदर्शित की । जीवनियों में कहीं– कहीं हास्य– विनोद का पुट भी है। अयोध्या के प्रसिद्ध कवि लछोराम के बारे में वे लिखते हैं–''लछोराम जी के चित्र से मालूम होगा कि यद्यपि आप पुराने ढंग के कवि थे और पुराने ढंग की पगड़ी पहनते तथा लाठी बाँधते थे तथापि पुरानी चाल के जूतों की जगह आप बूट पहनते थे। नयी चीजों से बूढ़े कविवर भी नहीं बचे।''

द्विवेदी जी का लेखन और उनका रचना–काल १९२० ई० से पूर्व का रहा है, उनकी रचनात्मक ऊर्जा का सर्वश्रेष्ठ रूप अब तक अभिव्यक्त हो चुका था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सन् १९२० के महत्व को स्वीकारते हुए कहते हैं कि ''सन् १९२० ई० भारतवर्ष के लिए युगांतर ले आने वाला वर्ष है। इस वर्ष भारत का चित्र पुराने संस्कारों को झाड़कर नवीन मार्ग के अनुसंधान में प्रवृत्त हुआ था। नवीन आशा और नवीन आकांक्षा के प्रति जैसा अडिग विश्वास इस समय दिखाई दिया, वह शताब्दियों से अपरिचित सा हो गया था।''इस वर्ष के बाद स्वाधीनता आन्दोलन नये चरण में प्रवेश करता है। इसमें द्विवेदी जी की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहीं। उन्होंने 'सम्पतिशास्त्र' पुस्तक में अँग्रजों के शोषण की खुलकर आलोचना की। स्त्रियों की दशा, धार्मिक उन्माद, सामाजिक कुरीतियों, अशिक्षा, शोषण एवं जनता के अपमान से वे क्षुब्ध हो उठते थे। उनकी इस पीड़ा को सरस्वती की सम्पादकीय टिप्पणियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पदुमलाल, पुन्नालाल वख्शी का यह कथन अक्षरसः सत्य है कि '' यदि कोई मुझसे पूछे कि द्विवेदी जी ने क्या किया? तो मैं उसे समग्र आधुनिक हिन्दी साहित्य दिखलाकर कह सकता हूँ कि यह सब उन्हीं की सेवा का फल है। हिन्दी साहित्य गगन में सूर्य, चन्द्रमा और तारागणों का अभाव नहीं है। सूरदास तुलसीदास, पद्माकर आदि कवि साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। परन्तु मेघ की तरह ज्ञान–राशि देकर साहित्य के उपवन को हरा–भरा करने वालों में द्विवेदी जी की गणना होगा।

कविता

यह व्यवस्था है

डॉ0 अश्विनी
भागलपुर
मो0 9470023033

यह व्यवस्था है
शोषण है, आतंक है
विकृति का दस्तावेज है
परिवर्तन के
पाखण्ड की नसीहत है
यह अंधी और बर्बर है
खूंखार इरादों की
हकीकत है
यह नंगी दौड़ में शामिल
लूंज–पूंज
किराये की पाँव पर
चलती है और
अहंकार की कोख में
पलती एक तवियत है
,जो निठारी की कोढियों की रखैल
चमचों और चाटूकारों की वसीयत है
कभी पागल की तरह
बहशी मिजाज की
रक्षा–कवच बनती है
और बादशाहत की
सफेद भाषा में
चुनौती देती
गैर इरातदन हत्या की
वकालत करती है
तभी तो यह आकांक्षाओं
और भद्रलोक की सरपरस्ती में
मचलती , मस्ती करती है
जुगाली करती है
फिर नरपिशाचों की
बस्ती में टहलती है
और मजबूती के साथ खड़ी
आज की महान शख्शियत है।

आलेख

भूमण्डलीकरण के दौर में मुन्शी प्रेमचन्द

छोटे लाल गुप्ता
जयप्रकाश विश्वविद्यालय
छपरा (बिहार)
मो0न0-9085210732

कल्पना के व्योम में विचरण प्रकृति के रूपमाधरी के पात्र एवं स्वप्नों की दुनिया में खोए रहने से कवि या लेखक कर्मसिद्ध तो होता है पर जनता पूछती है– ''जग में अत्याचार, अनाचार, दुराचार, व्यभिचार क्यों व्याप्त है?मानवता के विकास पर प्रश्न चिह्न क्यों लगा है और कवि या लेखक क्या कर रहे हैं। आज प्रत्येक कृति का महत्त्व इसी दृष्टि से आँका जाता है कि वह अपने युग के लिए कितनी उपयोगी है? युगीन समस्याओं के प्रति कितनी जगरूक है? भविष्य में कितनी प्रासंगिक एवं उपयोगी होगी?

आज भूमण्डलीकरण के दौर् में मनुष्य के समक्ष सबसे बड़ा संकट है, उसकी मनुष्यता को बचाए, जिलाए रखना, लाख विध्न–बाधाओं के बावजूद। समाज में मूल्य, नैतिकता, ईमानदारी, पारस्परिकता अपना अर्थ और प्रत्यय खोते जा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति भयाक्रांत और संकटग्रस्त हैं। भ्रष्टाचार की कठिन माँग है आदमियत बचाए रखने की। अन्याय, शोषण, और भ्रष्टाचार में लिप्त आदमी को सत्पथ पर लाने के लिए जागरूक करने की।

ऐसे में, प्रेमचन्द–साहित्य की प्रासंगिकता और उपादेयता और बढ़ जाती हैं जिनके साहित्य रचना का एक मात्र उद्देश्य मानवता की सेवा है। "प्रेमचन्द्र ने प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन में कहा था कि साहित्य वही है, जो जागरण का गीत गाए। लोगों को अपने कर्तव्य और अधिकार के प्रति प्रतिबद्ध बनाए।"

प्रेमचन्द मानव की मानवता का उद्घाटन करते हैं, उसकी जिन्दगी की हकीकतों से हमारा साक्षात्कार कराते हैं। समाज में बढ रहे उत्पीड़न, अन्याय और शोषण के विरूद्ध आवाज उठाते हैं उनकी समसामयिकता और प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाना बेमानी है।

प्रेमचन्द के पूर्व की उपन्यास परम्परा में बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवास दास, राधाचरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह, गोपालराम गहमरी, गौरी दत्त, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री आदि रचनाकारों ने विविध विषयों पर उपन्यासों की रचना की। इन रचनाकारों में कोई तिलस्मी और ऐयारी गाथा लिखकर अपनी कल्पना शक्ति का परिचय देता था, तो कोई जासूसी और साहसिक उपन्यासों की रचना में मशगूल था और कोई रीतिकाल के प्रभाव में आकर प्रेम और रोमांस को अपनी कथावस्तु का विषय बनाकर पाठकों का सरस मनोरंजन करता था।

प्रेमचन्द के पूर्व उर्दू उपन्यासकारों में हैदरी, निहालचन्द लहौरी, मज़हर अली खां, मिर्जा रजब, रतननाथ सरशार, शरर और मुहम्मद हादी रूसवा आदि उपन्यासकार हुए, जिनमें कोई कल्पना की उड़ान भरता था, जो कोई जमीन पर पैर रखकर चलता था। कोई किस्सा लैला–मजनूं और किस्सा हातिम ताई का बयां करता तो कोई इस्लाम और अरब की ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर मुसलमानों की सभ्यता और संस्कृति का विश्लेषण करता था। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यास परम्परा में रचनाकार स्वप्न देखता था और मनमाना तिलिस्म बांधता था। उसके कथा साहित्य का जीवन से कोई विशेष सरोकार न होकर मात्र मनोरंजन से था। ऐसी स्थिति में प्रेमचन्द ने साहित्य को जीवन से जोड़ा और उसे एक नई दिशा दी। उन्होंने उपन्यास को मनोरंजन के क्षेत्र से निकाल कर तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक समस्याओं से सम्बद्ध किया।

प्रश्न यह है कि आज उनका साहित्य प्रासंगिक है या इसे इतिहास के पेट में डाल देना चाहिए अथवा वह काल और परिवेश की सीमा में बद्ध होकर बासी हो गया है। हम यह मानते हैं कि साहित्य निश्चय ही प्रासंगिक है। लेकिन कल भी इतना ही प्रासंगिक रहेगा, यह नहीं कहा जा सकता। तुलसीदास आज अप्रासंगिक हैं, यह कहना कठिन है। लेकिन क्या प्रेमचन्द और तुलसीदास की प्रासंगिकता एक जैसी है?यदि नहीं, तो इसका कारण, काल और परिवेश है। तुलसीदास के समय की जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक समस्याएं थीं, उनमें बदलाव आ चुका है। लेकिन प्रेमचन्द के युग की जो समस्याएं थीं वे आज बहुत नहीं बदलीं। सामाजिक व्यवस्था, उसकी विसंगतियां और अन्तर्विरोध आज भी ज्यों के त्यों अपने विकराल रूप में विद्यमान है। फिर प्रेमचन्द की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न कैसा?

जो प्रेमचन्द की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं, उनसे पूछा जा सकता है कि क्या आज कमलाचरण (वरदान) अपने धनवान बाप की सम्पत्ति का नाजायज उपयोग करता नहीं दिख पड़ता? क्या आज महन्त रामदास (सेवासदन) नहीं है, जो 'श्री बाके

बिहारी' के नाम पर समाज का शोषण करता है, हत्या करवाता है, मन्दिरों में वेश्यावृत्ति करवाता है और रामनामी दुपट्टा ओढ़कर वासनामयी दृष्टि से महिलाओं को देखता है? क्या आज ज्ञानशंकर (प्रेमाश्रम) जीवित नहीं हैं, जो सम्पत्ति और जायदाद के लालच में विधवा गायत्री पर डोरे डालता है, भक्ति का छद्मवेश दिखलाता है, अपने भाई से इस कारण चिन्तित रहता है कि वह पिता की सारी सम्पत्ति के आधे का हकदार है। वह अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए किसी को विष भी दे सकता है? क्या आज गौस खां (प्रेमाश्रम) नहीं है, जो किसानों पर जुल्म और कहर ढ़ाता है? क्या आज प्रत्येक दारोगा दयाशंकर (प्रेमाश्रम) का प्रतिरूप नहीं है, जो धांधली मचाते हैं, झूठे मुकदमें और अभियोग बनाते हैं और किसानों, गरीबों तथा दलितों से नाजायज मुचकले लेते हैं? क्या आज नवयौवना पत्नी का वृद्ध पति तोताराम (निर्मला) अपनी पत्नी को प्रसन्न करने के लिए वस्त्र और आभूषण लाते हुए नहीं दीख पड़ता और प्रसन्न न कर पाने पर निर्मूल शंकाएं नहीं करता? क्या आज सूरदास (रंगभूमि) सड़क पर भीख मांगते हुए नहीं दिख पड़ता, जिसकी भूमि पर उसके विरोध करने पर भी कारखाना खुल जाता है। यही नहीं अहिंसा का अनन्य उपासक सूरदास क्या हिंसा का शिकार नहीं होता? क्या आज जनसेवक (रंगभूमि) का अभाव है, जो अपने स्वार्थ के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार रहता है? क्या आज मध्यवर्गी युवक रमानाथ (गबन) बिल्कुल मर चुका है, जो मिथ्या प्रदर्शन के कारण गबन करता है? क्या आज खटिक (गबन) नहीं है, जो स्वदेश हित अपने दो पुत्रों को गवांकर भी देश–प्रेम से अभिभूत है? क्या आज सूदखोर, मुनाफाखोर और पाखण्डी समरकान्त (कर्मभूमि) लोगों से कर्ज वसूल करते नहीं मिल जाता? क्या आज आपके आसपास अनेक सामाजिक विसंगतियों का शिकार होकर तिल–तिल कर मरता हुआ होरी (गोदान) नहीं दिखलाई पड़ता? या आज समाज में घीसू, माधव (कफन) और हलकू (पूस की रात) जहां–तहां नहीं दिखलाई देते?

क्या आज सुमन (सेवासदन) नहीं हैं, जिसे यह समाज वेश्या बना देता है, दालमण्डी पर बैठने के लिए विवश कर देता है?क्या आज दालमण्डी आबाद नहीं है? क्या आज दहेज का भयंकर रूप देखने को नहीं मिलता? क्या आज धनाभाव के कारण निर्मला (निर्मला) का विवाह चालीस वर्षीय तोताराम से नहीं होता? क्या आज रानी जाहन्वी (रंगभूमि) का स्वाभिमान जाग्रत नहीं है, जो समाज–सेवा करते हुए अपने पुत्र की मृत्यु पर गर्व से फूले नहीं समाती? क्या आज सोफिया (रंगभूमि) अपने प्रेमी को खो देने पर विभिन्न सामाजिक कारणों से गंगा में प्राण विसर्जन करती नहीं दिख पड़ती?अंधेरे से अपना नंगापन ढकने वाली सकीना (कर्मभूमि) क्या आज यह सत्य मर चुका है? क्या आज बुधिया नहीं रह गई है, तो यह मानने मे तनिक भी कठिनाई नहीं हो सकती कि प्रेमचन्द अप्रासंगिक हैं, लेकिन यदि ऐसे सैकड़ों, हजारों, लाखों व्यक्ति हमारे इर्द–गीर्द रहे हैं, तो यह कहना कितना तर्कसंगत होगा कि प्रेमचन्द अप्रासंगिक हैं?

समाज में आज भी दहेज प्रथा के कुपरिणाम देखने को मिलते हैं, अनमेल विवाह होते हैं, पाखण्डियों के जत्थे घूम रहे हैं, दालमण्डी आबाद है, सच्चरित्र व्यक्तियों की दुर्गति समाज के हाथों होती है, पुलिस का जुर्म, अत्याचार और अन्याय किसी से छिपा नहीं है, रिश्वत का बाजार गर्म है, मिथ्याभाषी नेताओं की तादात प्रतिदिन बढ़ रही है। तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द ने जो समस्याएं उठाई थीं या जो विकृतियां उस समय में थीं, वे आज भी उसी रूप में, बल्कि उससे भी कहीं अधिक विकराल रूप में दिखलाई पड़ती है। अर्थात् प्रेमचन्द आज और भी प्रासंगिक है।

प्रेमचन्द का साहित्य अपने समय, समाज और ऐतिहासिक स्थितियों से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। उसकी प्रासंगिकता प्रयोजनीयता की उपेक्षा करके हम उसे अप्रासंगिक नहीं कह सकते। वे अपने काल और परिवेश से जुड़े हुए लेखक हैं, इसलिए उनके साहित्य में जिस युग–बोध का आभास हमें होता है, वह आज भी परिलक्षित होता है। प्रेमचन्द ने जिस रचनात्मक चेतना से साहित्य सृजन किया है, उस रचनात्मक चेतना से पाठक की चेतना भी जागृत होती है वह कुछ सोचने विचारने के लिए बाध्य हो जाता है। क्या यह प्रेमचन्द की प्रासंगिकता नहीं है?

प्रेमचन्द उन रचनाधर्मियों में है। जिन्होंने सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया। वे हिन्दी साहित्य के इतिहास में जनवादी और यथार्थवादी परम्परा तथा प्रगतिशील परम्परा के जनक भी है। प्रेमचन्द में चली आती हुई रूढ़िगत परम्पराओं से मुक्ति पाने की छटपटाहट भी एकदम स्पष्ट है, जो आज की सर्वाधिक प्रासंगिकता है। इतिहास सापेक्ष रचना ही सार्थक होती है, जिसमें अतीत–वर्तमान का द्वन्द्वात्मक सम्बंध होता है। क्या ऐसा प्रेमचन्द में नहीं है?

प्रेमचन्द किसी वाद या सम्प्रदाय से बंधकर नहीं चले। प्रगतिशील चिंतक होने के कारण वे सामंतवाद विरोधी, साम्राज्यवाद विरोधी, शोषण विरोधी और सांप्रदायिकता विरोधी संघर्ष के साहित्यकार है 'कफन' कहानी में शाशकों और जमींदारों का संघर्ष है, जो वस्तुतः परिस्थितिजन्य ही नहीं, बल्कि परंपरागत भी है 'रंगभूमि' से औद्योगीकरण की समस्या को उठाया गया है। औद्गोकरण ही नहीं बल्कि प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में वर्तमान समाज के सब स्वरों को उधेड़कर सामने रख दिया है। वे अंग्रेजी साम्राज्यवाद की झूठी आदर्शोन्मुखता का ही पर्दा नहीं उठाते, वरन् पूंजीपति, उद्योग संचालक, जमींदार असहाय जनता के होने वाले संघर्ष का यथार्थ रूप भी दिखलाते हैं। ग्रामीण और सामंतशाही का संघर्ष कायाकल्प में भी देखा जा सकता है। इसी प्रकार कर्मभूमि में राजनीतिक जीवन के आन्दोलनों के चित्रण के साथ ही सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं के विरोध के संघर्ष का भी चित्रण किया गया है। गोदान केवल शाशक जीवन का महाकाव्य ही नहीं है। अपितु सामाजिक शोषण का भी अद्वितीय दस्तावेज है। साम्प्रदायिक

सद्भाव 'पंच परमेश्व' रचना की प्रमुख समस्या है। 'मंत्र' कहानी भी इसी साम्प्रदायिक समस्या का परिणाम है। गरीबी और शोषण का जीवंत चित्रण 'सवा सेर गेहूं' और 'पूस की रात' आदि कहानियों में किया गया है। इस प्रकार आज भी पूंजीवाद, जातिवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता आदि अनेक समस्याएं यथावत् विद्यमान है। प्रेमचन्द जिस सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति के अग्रदूत थे, वह क्रान्ति अभी अधूरी है, क्योंकि समाज आज भी उन समस्याओं से जूझ रहा है, जिनसे प्रेमचन्द का समाज जूझा करता था, उनसे उबर नहीं सका है।

प्रेमचन्द ने रूढ़ियों और अंधविश्वासों का चिह्ना भी हमारे सामने खोला है। उन्होंने कर्मभूमि में धार्मिक पाखण्ड का रहस्योद्घाटन किया है। एक आलोचक के शब्दों में– गोदान खुद एक अंधविश्वास है। गरीब की हास और बलिदान आदि कहानियों में भूतों का अद्भुत चित्रण किया गया है। प्रेमचन्द साहित्य सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं, अंधविश्वासों तथा टोना–टोटकों पर गहरा प्रहार करता है। यद्यपि शुरू–शुरू में प्रेमचन्द परंपराओं के प्रति अतिरिक्त सहानुभूति रखते थे। लेकिन प्रतिभा और प्रौढ़ता के विकास ने उन्हें विरोध करना सिखाया। समाज में व्याप्त विधवा विवाह के विरोध, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, बहु विवाह, जातिवाद, छुआछूत आदि अनेक समाज को जराजीर्ण कर देने वाली परम्पराओं का उन्होंने खुलकर विरोध किया। यही नहीं, विरोध के परिणाम स्वरूप उन्होंने स्वयं अपना विवाह एक बाल विधवा से ही किया। राजनैतिक विकृतियों को लेकर लिखा गया प्रेमचन्द का कथा साहित्य आज भी बासी नहीं पड़ा है। 'सत्याग्रह' कहानी में मोटेराम शास्त्री को रूपया देकर सत्याग्रह के लिए तैयार किया जाता है। वे इमरती और रसगुल्ला खाकर अनशन पर बैठते हैं, पर शाम होते ही भूख सताने लगती है। 'आहुति' में छात्र अपने साथियों के साथ आन्दोलन में शामिल हो जाता है। 'कुत्सा' में उन लोगों का चित्रण किया गया है जो चन्दे के रूपयों से ऐश फरमाते है। क्या आज ऐसा नहीं होता? फिर प्रेमचन्द को अप्रसांगिक और बासी कहना उचित नहीं प्रतीत होता।

विचारणीय प्रश्न है कि जब संयुक्त परिवार नहीं रहेंगे, विधवा समस्या हल हो जायेगी, दहेज प्रथा की संक्रामक बीमारी से छुटकारा मिल जाएगा, जातिवाद और छुआछूत का बिलकुल अन्त हो जाएगा, रूढ़िया, अंधविश्वास और सड़ी–गली परम्पराएं नहीं होगी, गरीबों और दलितों का शोषण समाप्त हो जाएगा, धार्मिक पाखण्ड लुप्त हो जाएंगे, घूसखोर अधिकारी नहीं होंगे मिथ्याभाषी नेता द्वापर के धर्मराज बन जाएंगे और साम्प्रदायिकता समाप्त हो जाएगी, स्वार्थ और लोलुपता का अन्त हो जाएगा, दाल मण्डी उजड़ जाएगी, अनमेल विवाह नहीं होंगे, जुल्मजोर और अत्याचार समाप्त हो जाएंगे। क्या तब भी प्रेमचन्द प्रासंगिक रहेंगे? हम थोड़ी देर के लिए मान लेते हैं कि जब इन समस्याओं और विकृतियों का अन्त हो जाएगा, प्रेमचन्द भी मर जाएंगे। इतने बड़े सामाजिक परिमार्जन की वेदी पर तो कोई भी व्यक्ति प्रेमचन्द क्या विश्व के किसी साहित्यकार को अप्रांसगिक और निरर्थक मानने के लिए तैयार हो सकता है। किन्तु कब 'नौ मन तेल होगा और कब राधा नाचेगी'। साथ ही क्या प्रेमचन्द साहित्य में मात्र उपर्युक्त समस्याओं को ही उठाया गया है? क्या उसमें मानव के शाश्वत मनोभावों और मनोंवृत्तियों–प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, स्वार्थ, मानव–मानव के बीच जुड़ने और टूटने वाले सहज सम्बंध आदि का विश्लेषण नहीं किया गया है? क्या ये मानव–मनोभाव और मनोवृत्तियां मरने वाली हैं?क्या दस–बीस वर्ष बाद इन सबका रूप बदल जायेगा? यदि नहीं तो प्रेमचन्द सदैव प्रासंगिक रहेंगे। हां, यह अलग बात है कि उनकी प्रासंगिकता और उपादेयता का सन्दर्भ बदल सकता है, लेकिन मिट नहीं सकता।

वस्तुतः मानवतावादी लेखक प्रेमचन्द का सारा कथा साहित्य यथार्थ की ठोस भूमि पर आधारित है, जो तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिवेश में रचित होने के बावजूद काल और परिवेशबद्ध नहीं, अपितु काल और परिवेश का अतिक्रमण कर सार्वकालिक बन गया है। आज के इस भूमण्डलीकरण के दौर में मुंशी प्रेमचन्द की आवश्यकता बड़ी शिद्दत के साथ महसूस हो रही है।

गरीब के पक्षधर , उनपर होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध अपनी आवाज बुलन्द करने वाले तथा गरीबों की निःशुल्क सेवा करने वाले सर आगस्टाइन एक आदर्श वकील थे।

एक बार किसी गरीब का मुकदमा उन्होंने लिया, परन्तु उससे कोई फीस न ली। इससे अन्य वकील बहुत नाराज हुए, कहने लगे – यह वकालत पेशे के खिलाफ है।' आगस्टाइन ने मुकदमें की पैरवी की और जीत गए। कुछ दिनों बाद उस गरीब ने थोड़ा थोड़ा जोड़कर इकट्ठे किये और रूपये आगस्टाइन के पास भेज दिये। उन्होनें उसके संतोषार्थ रूपये स्वीकार कर लिए और विरोधी वकीलों से कहा' उस गरीब के पास जो कुछ था, मैंने पूरा ले लिया है, इसलिए मैं समझता हूँ कि यह वकीलों की परमपरा के खिलाफ नहीं हैं ।

आलेख

हिंदी साहित्य में संस्कृत

काव्यशास्त्र की भूमिका

डॉ० रमा प्रकाश 'नवले'
पीपल्स कॉलेज, नांदेड
मो० : 09890350325

हिंदी काव्यशास्त्र का अध्ययन–अध्यापन करते समय 'हिंदी काव्यशास्त्र' के नाम पर हर अध्यापक को अधिकतर संस्कृत काव्यशास्त्र का ही अध्ययन– अध्यापन करना पड़ता है। इस स्थिति का देखकर इस बात की आवश्यकता भी महसूस होती है कि हिंदी के अध्यापक को संस्कृत भाषा का ज्ञाता भी होना चाहिए। करीब–करीब यही स्थिति मराठी और अंग्रेजी की भी हो सकती है। एक दूसरी कठिनाई यह भी है कि भाषा की समझ के अभाव में हिंदी के अध्यापकों को पूरी तरह से अनुवाद पर निर्भर होना पड़ता है। अनुवाद की सीमाओं को ध्यान में रखेंगे तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि संस्कृत का मूल ज्ञान हम तक पहुँचने में अवधाराणाओं में कुछ परिवर्तन भी हो सकता है। ठीक यही स्थिति पश्चिमी काव्यशास्त्र के संदर्भ में भी कही जा सकती है। लैटिन से हिंदी तक की यात्रा पार करने के लिए पहले लैटिन –अंग्रेजी –हिन्दी की सीढ़ी पार करनी पड़ती है। डॉ0 नगेन्द्र ने रस ,अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य संप्रदायों की बुनियादी संस्कृत ग्रंथों को अपने मित्र संस्कृत के पंडित विश्वेश्वर की सहायता से हिन्दी में अनुदित कर उन्हें पाठकों को उपलब्ध कराया।

साहित्य एक कला है। कलाओं के स्वरूप पर जितनी सूक्ष्मता एवं व्यापकता से संस्कृत काव्य में विचार किया गया है उतनी सूक्ष्मता हिंदी काव्यशास्त्र में दिखाई नहीं देती। यह कहते समय हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि युग बदल गया , मनुष्य बदल गया, जीवन की जटिलता बढ़ गयी, मनुष्य पर परिस्थितियाँ हावी हो गयी। मनुष्य के साथ–साथ साहित्य बदल गया, साहित्य की विधाएँ बदल गयी, समीक्षा की पद्धतियाँ बदल गयी। पहले कलाएँ सौंदर्य मूलक थी । हिंदी में प्रगतिवादी विचारधारा ने कला के मूल उत्स को बदल दिया। वैसे तो कबीर के साहित्य के मूल्यांकन में सामाजिक चेतना बहुत प्रखर रूप में आयी थी। तुलसी साहित्य की उपयोगिता की ओर झुक गए थे। द्विवेदी युग का साहित्य मनुष्य के जीवन के उपयोग की बात कर रहा था। परंतु प्रगतिवाद ने अपनी बुलंद आवाज में (मार्क्स का प्रभाव) पहली बार साहित्य का संबंध शोषितों के दु:ख के साथ जोड़ दिया और उस समय साहित्य को नकारा, जिसमें शोषितों के दु:ख की बात नहीं थी। अर्थात् कला के मूल्यांकन का निकष् बदल गया । कला मूल्य हाशिए पर चले गए और साहित्य का मूल्यांकन कालेतर मान्यताओं के आधार पर शुरू हुआ। स्वातंत्र्योत्तरकाल में व्यक्ति का जटिल जीवन, उसके जीवन का वास्तविक चित्रण मनुष्य जीवन की जटिल अनुभूतियों का प्रामाणिक चित्रण, साहित्य कला के मूल्यांकन के निकष् बन गये। जो साहित्य पाठकों का अधिकाधिक बेचैन करेगा और सोचने के लिए बाध्य करेगा वह साहित्य श्रेष्ठ माना जाने लगा। वर्तमान समय में स्त्री ,दलित, आदिवासी और अल्प संख्यक विमर्श महत्वपूर्ण हो गये हैं। इनकी अपनी– अपनी विचार धाराएँ है। इनके अपने मूल्यांकन के निकष हैं। अब साहित्य जीवानुभूतियो की अभिव्यक्ति का साधन बन गया है। एक बार फिर से यह विवाद शुरू हुआ है कि साहित्य का मूल्यांकन कला के निकषों के आधार पर होना चाहिए या साहित्यत्तर निकषों के आधार पर? दोनों भी समूह अपने अपने मतों पर अडिग हैं। ऐसे समय में गोष्ठी का यह विषय अत्यंत उपयोगी है। हम फिर बात उपयोगिता की कर रहे हैं। साहित्य कला 'अस्मिता का आस्वाद है जो उपयोगी होकर भी आल्हादित करता है। आल्हादित करना साहित्य कला का धर्म है। इसे हम भूल गए हैं।

संस्कृत काव्यशास्त्र के रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य सिद्धांत कला के उपर्युक्त धर्म की रक्षा करते हैं। साहित्य का मूल्यांकन साहित्य कला के निकषों के आधार पर करते हैं। भट्टनायक के साधारणीकरण सिद्धांत ने अस्वादक आश्रय की साधारणीकृत स्थिति का विश्लेषण कर संपूर्ण विश्व के मनुष्य की अनुभूति के स्तर पर एक ही बिंदु पर लाकर एक समान बना दिया है। आज महाकाव्य तो नहीं लिखे जाते परंतु उपन्यास , कहानी, कविता, नाटक, एकांकी की अनुभूति साधारणीकृत अनुभूति नहीं है क्या? डॉ0 नगेन्द्र ने 'कवि अनुभूति के साधारणीकरण' की बातकर भट्टनायक के सिद्धांतों को अधिक व्यापक और प्रासंगिक बनाया है। शुक्ल जी ने तो घोषित ही कर दिया कि कवि वही हैं जो किसी भाव का कोई विषय इस रूप में लाये कि वह सामान्यत: सबके उसी भाव का आलंबन हो। रस सिद्धांत 'आलंबन' और 'आश्रय' दिए। इन शब्दो में विस्तार की काफी गुंजाइश है।

शशिभूषण 'सितांशु' एवं डॉ0 सूर्यनारायण रणसुभे को वर्तमान समय में संस्कृत के इन सभी काव्यसिद्धांतो की तुलना में सबसे अधिक संभावनाएं ध्वनि सिद्धांत में दिखाई देती है। ध्वनि सिद्धांत ने 'व्यंग्यार्थ' का गहरा विश्लेषण किया है। 'ध्वनि काव्य 'को (व्यंग्यार्थ प्रधान काव्य को) सबसे श्रेष्ठ काव्य के रूप में स्वीकारा है।

इस बिंदु पर सारे रस सिद्धांत को अपने सिद्धांत में समेटकर रस व्यंजित कैसे होता है ।इसकी व्याख्या उन्होंने की है। रचना में निहित अर्थ की सारी शक्ति , अर्थ की सारी संभावनाओं की ओर इशारा कर सहृदय पाठक को अर्थ की गहराई में खोकर ही तो पाठकों ने जाना कि साहित्य के क्षेत्र में एक और एक दो नहीं होते, तीन भी होते हैं... चार भी..... पाँच भी ... आठ भी.... ग्यारह भी .... । जिसने जिस रूप में व्यंग्यार्थ को जाना उसने उस रूप में उसे महसूस किया बहुत बाद में रिचर्ड ने 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म ' में प्रयोग के आधार पर यह बताने की कोशिश की कि कविता का अस्वादन समझ एक जैसी नहीं होती। संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्य विश्वनाथ ने ' साहित्य दर्पण' में रस के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए' रस अपने आप में अभिन्न होता है' यह कहकर इसका संकेत बहुत पहले दिया था। आज 'पाठकेन्द्री' आलोचना ने भी यही कहना शुरू किया है कि ' रचना को जन्म पाठक (आलोचक) देता है'– इसका भी आधार ध्वनि सिद्धांत ही है। आजकल केवल लिखकर देनेवाले अध्यापकों को यह समझ में आना चाहिए कि साहित्य के आस्वादकों को (जो साहित्य के आस्वाद की प्रक्रिया से अभी जुड़ रहे हैं ऐसे छात्र) कैसे आस्वाद की प्रक्रिया से दूर किया जा रहा है और उनकी प्रतिभा को कुंद। खैर हिंदी की सारी विधाओं में यह शक्ति निहित है ही। यदि यह शक्ति निहित नहीं है तो वह साहित्य ही नहीं है। सुप्रसिद्ध कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने 'मैला आँचल 'उपन्यास में तहसीलदारों के लिए कहा – 'पहले के तहसीलदार सांपनाथ थे आज के तहसीलदार नागनाथ हैं' – इस वाक्य में निहित व्यंग्यार्थ की सूचकता को जाने बिना किसी भी सुधी पाठक की अध्ययन की प्रक्रिया पूर्ण होगी?दलित लेखक अपनी 'जूठन' नामक रचना के अंत में यदि कहते हैं कि 'सारी स्थितियों के वाबजूद मैं हूँ तो बाहर का आदमी '– क्या दलित की इस पीड़ा को व्यंग्यार्थ के बिना जाना जा सकता है?'औरत पैदा नहीं होती, उसे बनाया जाता है' या मैत्रेयी जब अपनी गुड़िया भीतर गुड़िया' नाकम रचना में लिखती है कि 'औरत कुछ ज्यादा ही अपने आपको औरत समझती है। इन वाक्यों को स्त्री विमर्शकार बिना व्यंग्यार्थ के समझाए या महसूस कराए। संभव है? संस्कृत का ध्वनि सिद्धांत केवल आजतक के (वर्तमान स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक साहित्य के भी) हिंदी तथा हिन्दीतर सभी भाषाओं के साहित्य को समझने में सहायक नहीं है बल्कि तब तक सहायक रहेगा जब तक साहित्य का अस्तित्व बना रहेगा। ध्वनि सिद्धांत ने साहित्य की भाषा एवं विषय से संबंधित सारी सीमाओं को तोड़कर सारे साहित्य को उपकृत किया है।

ध्वनि सिद्धांत के साथ मुझे संस्कृत के अलंकार सिद्धांत में भी बहुत अधिक संभावनाएँ दिखाई देती है। अलंकार सिद्धांत में भामह ने 'वाचां वक्रार्थ शब्दोक्तिरलंकाराय' तथा ' वैदग्धभंगीभाणिति' कहकर 'वक्रोक्ति ' को अलंकार का प्राण माना। वक्रोक्ति अर्थात विचित्र कथन, कहने का विशिष्ट ढंग, कहने की विशिष्ट पद्धति। भामह के अलंकार शब्द को आज के सीमित अर्थ में न लेकर कहने की सारी विशिष्ट पद्धतियों अलंकार शब्द के अंतर्गत आती है। अलंकार सिद्धांत ने भी केवल हिंदी साहित्य पर नहीं बल्कि सभी भाषाओं के साहित्य पर बहुत बड़ा उपकार किया है यह कहने का विशिष्ट ढंग ही सारे प्रचलित विषयों को नया, मौलिक अर्थ देता है एवं अर्थ की सारी संभावनाएँ प्रदान करता है। ध्वनि सिद्धान्त और अलंकार सिद्धान्त यहाँ एक दुसरे के पूरक है। ध्वनि सिद्धान्त ने अर्थ की संभावनाओं की ओर ईशारा किया तो अलंकार सिद्धन्त ने अर्थ की संभावनाओं के निर्माण का कारक 'अभिव्यक्ति के ढंग' का विश्लेषण किया है। एक के अभाव में दूसरा अपाहिज है। जैसे जल और वीची का अस्तित्व है। कहने के लिए दोनों अलग है पर हैं तो अभिन्न ही। रचनाकार के अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग ही तो पारंपरिक विषय को नूतन बनाता है जैसे–

'सोचा ही नहीं भी किसी दिन
इस तरह चुकाने होंगे कर्ज मुझे
धुप, हवा और पानी के
किसने चुकाए कर्ज कभी

बचपन में सुनी कहानी के या 'दुनियाभर के सारे पुरूष चिंतित हैं/ क्योंकि अब औरतों ने सोचना शुरू किया है' ये पंक्तियाँ क्या अपनी अभिव्यक्ति के कारण ही मार्मिक नहीं बन पायी हैं? कविता तो गुढ़ार्थ सूचक ही होती है। परंतु गद्य की सारी विधाएँ भी विशिष्ट कथन के कारण ही विशेष बन जाती है– योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है, शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा मोहन राकेश का नाटक अषाढ़ का एक दिन' का यह वाक्य सारी योग्यता के बावजूद सिफारिश के अभाव में जिसे भटकना पड़ रहा है उस व्यक्ति की पीड़ा कालिदास के द्वारा ले आता है। बहुत सपाट वाक्य पर कहने के विशिष्ट ढंग ने ही इस वाक्य को विशिष्ट बनाया है। लेख की मर्यादा को ध्यान में रखकर विषय को यह कहकर विराम दिया जा रहा है कि संस्कृत काव्यशास्त्र ने हिंदी की विधाओं को ही नहीं समग्र साहित्य को शाश्वत मूल्य दिए हैं जो युग–युग तक किसी भी भाषा के साहित्य के लिए उपकार होंगे।

आलेख

आधुनिक कथा साहित्य की

बदलती प्रवृत्तियाँ

सुनिल कुमार परीट
वेलगाम, कनार्टक
मो0 8367417505

कहा जाता है कि यथार्थ को संजोते हुए जीवन की वास्तविकता का चित्रण कर समाज की गतिशीलता को बनाये रखने का मर्म ही कहानी है। लेकिन उम्मीदों पर खरा नहीं उतर पा रहा है 'आधुनिक कथा साहित्य', क्योंकि जीवन वास्तविक तथ्यों से कुछ हटकर ही आधुनिक कथा साहित्य ने रूप धारण कर लिया है। जिनसे उम्मीद सी बंधती थी कि इस दौरान कुछ ऐसी कहानियां आयेंगी जिनकी गूंज इस सदी के अंत तक सुनाई पड़ेगी, पर यहां ऐसा कुछ न था जो हिन्दी कहानी की रचनात्मकता सत्ता स्थापित करने की निर्मल इच्छा से भरा हो और अक्सर चर्चा के केन्द्र में रचना से ज्यादा रचनेतर चीजें हावी रहीं। महाभारत और महाबार के दौर में विशेषांक के पहले 'महा' विशेषण जोड़ने की मौलिक कल्पना वाले रवीन्द्र कालिया ने छियासठ कहानियों के एकत्रीकरण से यह सिद्ध कर दिया कि पत्रिका सम्पादित करने के लिए दृष्टि कितनी गैर जरूरी चीज होती है और जब कालिया जी को इसका आभास हुआ तो वे अपने उतावलेपन में ऐ लड़की! कहानी की गैर रचनात्मक खूबियों का बखान करने में इस तरह जुट गये मानों उनका सम्पादक होना कृष्णा सोबती द्वारा वह कहानी लिख पाने के लिए आवश्यक था। ऐसा पहली बार हुआ कि कोई सम्पादक छियासठ कहानियों को पढ़े जाने का अवकाश दिए बिना किसी कहानी की चर्चा का श्रेय लेने की हड़बड़ाहट में इस तरह भर गया हो, और 'मैं महान' वाला आत्मगौरव भी ऐसे कि किस तरह एक पाठक ने लिखा कि 'ऐ लड़की ' पढकर इतना डर गये कि गायत्री मन्त्र का जाप करने लगे। यह नये किस्म का पुनरूत्थानवाद था और वहां सूचनाएं थीं कि कैसे अलका सरावगी ने अपनी पहली कहानी से ही कमाल कर दिया।

आज की हिन्दी कहानी अब भी गांव में घूम रही है। इस सिलसिले में यह जानना आतंक भरा है कि यहां बहुत कम कहानियाँ अपना शहर उसके पूरे आतंक को साथ लेकर उपस्थित हुई हैं। गांव से लेकर कस्बे की या फिर 'देश काल रहित ' इन कहानियों में अमानवीकरण को खतरे से लेकर संवेदन शून्यता का ठंडा स्वीकार , सारा कुछ मौजूद तो है पर इन सबके बावजूद शहर अपने परिवेश सहित जैसे यहाँ अनुपस्थित है और यह तब जब अब भी ज्यादातर कथाकार शहरों में है, छुट्टियों में गांव भले जाते हों! तो क्या इससे संकेत यह लिया जा सकता है कि साहित्य के द्वारा कई बार आसपास से यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या हिन्दी में नई कविता की तरह आज एक नई कहानी भी जन्म ले रही है?आज की कविता के साथ ' नई' विशेषण कुछ इस तरह से रूढ़ हो गया है कि उसकी अपनी अर्थवेत्ता गुम सी हो गयी प्रतीत होती है। हर युग में युग की परिस्थितियों के अनुकूल नई कविता जन्म लेती रही है, और इस अर्थ में निःसन्देह आज एक नई कहानी जन्म ले रही है और निःसन्देह वह हमारे समय तक की संचित चेतना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बन रही है। नई कहानी से यह अर्थ कदापि नहीं है कि आज की कहानी ने पहले की परंपरा से सर्वथा विच्छिन्न होकर उसे 'पुरानी' की संज्ञा में बन्द कर दिया है और स्वयं उससे स्वतन्त्र होकर विकास कर रही है। नई कविता के क्षेत्र में इस तरह के भ्रम का अवकाश फिर भी है, परन्तु नई कहानी के क्षेत्र में बिल्कुल नहीं। इसलिए हमारे सामने प्रश्न वस्तुतः यह है कि क्या आज की कहानी अपनी परंपरा को विकास के अगले सोपान तक ले जाने में समर्थ हुई है? क्या वस्तुतः आज के कहानीकारों ने अपने समय तक की उपलब्धियों से आगे किसी नए धरातल को छूने के प्रयत्न में सफलता प्राप्त की है?क्या इस पीढ़ी के हाथों इस कला को अधिक अर्थवेत्ता प्राप्त हुई है?

समकालीन आलोचना का अध्ययन करने पर नई कहानी तो क्या कहानी के अस्तित्व में ही सन्देह होता है। जैसा कि नामवर सिंह के 'कहानी' के विशेषांक में प्रकाशित लेख से स्पष्ट है, कहानी के संबंध में समकालीन हिन्दी आलोचक की उदासीनता या उखड़ी–उखडी सी जानकारी कहानी की सीमाओं को नहीं , आलोचक की सीमाओं को ही व्यक्त करती है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि पिछले कुछ वर्षो में साहित्य की इस विधा के अन्तर्गत जितने प्रयोग हुए हैं, पिछले दो–तीन वर्षो में आज की हिन्दी कहानी के मूल्यांकन के कुछ प्रयत्न हुए हैं परन्तु उनसे स्थिति स्पष्ट हो सकी हो, ऐसा नहीं। अधिकांश लेखों में दो–एक कहानीकारों के वस्तु और शिल्प संबंधी प्रयोगों की चर्चा उठाकर और शेष लोगों की नामावलियाँ प्रस्तुत करके ही कर्तव्य की इतिश्री समझ ली गयी। अन्यत्र इसी तरह के कुछ प्रयोगों के वस्तु और शिल्प को आधार मानकर नई कहानी की उपलब्धियों का सैद्धान्तिक आज का कहानीकार समकालीन आलोचक से यह आशा करे ये दुराग्रह न होगा कि वह उसके रूप में ही उसकी आलोचना करे, किसी अन्य के द्वितीय या तृतीय संस्करण के रूप में नहीं।

कहानी के रूप का परिमार्जन और उसकी सार्मथ्य का

विस्तार पिछली कई शताब्दियों में हुआ है। आज के कहानीकार की सफलता या असफलता का निर्णय इस आधार पर होगा कि वह उस शताब्दियों की विरासत का सही उपयोग करता हुआ स्मृद्धि ला सका है या नहीं

आज का कहानीकार आसपास के जीवन की मांसल भूमि को छोड़कर किन्ही वायव्य संकेतों में नहीं भटकना चाहता, इसलिए उसकी कहानी स्थूल है। परन्तु साथ ही कलात्मक प्रभाव पर दृष्टि रखते हुए वह अपनी बात अभिघा से न कहकर, एक संकेत, एक सजेशन द्वारा कहना चाहता है, इसलिए उसका लेखन उलझा हुआ प्रतीत हेाता है। यर्थाथ की प्रमाणिकता के साथ सांकेतिक प्रभावान्विति के समन्वय के सभी प्रयत्न सफल हुए हों ऐसा नहीं । परन्तु कई कहानियाँ हैं, जिनमें इन विशेषताओं का निर्वाह बहुत सफलतापूर्वक हुआ है। भीष्म साहनी की 'भाग्यरेखा', राजेन्द्र यादव की ' नया मकान' और 'प्रश्नवाचक पेड़', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसियसा' और शेखर जोशी की 'बदबू' आदि कहानियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। कहीं कहानी मानव–मन की विकृतियों का चित्रण करके उस वातावरण की भयावहता का संकेत देती है, जो उन विकृतियों को जन्म देता है, कहीं असुन्दर के विश्लेषण द्वारा सुन्दर के प्रति आस्था को व्यक्त करती है। इसीलिए कई बार केवल एक चरित्र या केवल एक वातावरण के चित्रण द्वारा भी कहानीकार एक सजेशन देने का प्रयत्न करता है। यदि वह सजेशन देने में सफल है, तो उसकी रचना अधूरी या एकांगी नहीं कही जा सकती ।

वातावरण की एक ध्वनि और व्यक्ति–मन की एक–एक प्रतिक्रिया के संघटन द्वारा वह अपेक्षित द्वन्द्वकी सृष्टि में सफल होता है। रामकुमार की कहानी 'डेक' और वर्मा की 'परिन्दे' इस प्रकार के संघटन के सफल उदाहरण हैं। इन कहानियों में वातावरण ने भी जैसे सजीव और सक्रिय चरित्र के रूप में भागवत ट्रेजेडी के निर्माण में भाग लिया है।

नए कहानीकार वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से कहानी के स्वरूप के परिमार्जन में व्यस्त हैं, इतना श्रेय तो उन्हें देना होगा। परन्तु नए–नए क्षेत्रों की खोज में असुन्दर से सुन्दर तथा सुन्दर से असुन्दर तक की अपनी अनवरत यात्रा में यदि कहीं वे भटक जाते हैं तो इसे उन्हें नत –शिर होकर स्वीकार करना होगा।

आज की कहानी की अनुपलब्धियों की बात उठायें तो सबसे पहले यही बात ध्यान में आती हैं कि नई कहानी समकालीन जीवन के यर्थाथ का सही प्रतिनिधत्व नहीं कर पा रहीं, क्योंकि खंडगत जीवन के बहुत–से चित्रों के अन्दर आज के अखंड जीवन का सही प्रतिबिम्ब देखने को नहीं मिलता। अधिकांश कहानीकारों ने नागरिक या ग्रामीण जीवन की संकीर्णता या असंकीर्णता के जो चित्र अपनी कहानियों में प्रस्तुत किये हैं उनसे आज के भारतीय जीवन के विराट् स्पन्दन का सही अनुभव नहीं होता। कुछ लेखकों के दिमाग में यह बात समायी है कि आज का नागरिक जीवन इस तरह के दलदलों में फँसा है कि वहाँ स्वस्थ्य मानव के दर्शन नहीं दे सकते, इसलिए वे कहानी में ग्रामीण जीवन के चित्र प्रस्तुत करके ही मानव के स्वस्थ्य सुन्दर रूप का परिचय दे सकते हैं। बात इतने तक ही सीमित नहीं है कि कहानी के अन्तर्गत जिन चरित्रों को हम प्रस्तुत करते हैं, वे दुर्बल हैं या सबल, या कि जिस वातावरण को हम उठाते हैं , वह संकुल है या असंकुल। असुन्दर से दूर कहीं सुन्दर का भी सद्भाव है, निर्बल से दूर कहीं सबल भी वर्तमान है, क्या इतने मात्र से जीवन को कुछ संकेत मिल पाता है? जीवन निरंतर विकास कर रहा है और उसके विकासक्रम में ही वह सब कूड़ा –कचरा पैदा हेाता है, जो उसके विकास में बाधा पहुँचाना चाहता है। उसकी सड़ाँध से ऊबकर हम वहाँ चले जाएँ, जहाँ अपेक्षया अधिक ताजी हवा बहती है, तो क्या उससे वह सड़ाँध दूर होगी?हिन्दी में ग्राम–जीवन को लेकर लिखि गयी कहानियों की प्रतिष्ठा के प्रसंग में कई बार ऐसी–एसी उद्घोषणाएँ की जाती हैं, जिनसे जीवन की विकास यात्रा के संबंध में भ्रान्ति उत्पन्न हो सकती है। यह सच होते हुए भी कि भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती है, इसमें सन्देह नहीं कि 'गाँव हमारे जीवन के विकास क्रम का अगला सोपान नहीं है।' जीवन के विकास क्रम को प्रभावित करनेवाली समस्याएँ जिन राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक आवर्तो में जन्म लेती हैं, उनके केन्द्र निःसन्देह हमारे गाँव नहीं हैं, गाँवों का जीवन उनसे प्रभावित अवश्य हो रहा है। जीवन की प्रगति में विश्वास रखनेवाले और उसके कल के रूप को निर्धारित करने में योग देनेवाले कलाकार के लिए क्या यही मार्ग है कि वह उस जीवन से दूर हट जाए, क्योंकि उसमें बहुत संकुलता दिखाई देती है? शहरों के मध्यवर्गीय जीवन में उसे जीवन और सौन्दर्य के दर्शन नहीं होते, इसलिए क्या इसी में उसकी महात्वाकांक्षा की परिणति है कि वह गाँवों में जीवन का स्वस्थ सौन्दर्य और मानव की ऊर्जस्वित शक्ति देखकर सन्तुष्ट हो रहे और क्या सचमुच शहरों के मध्यवर्गीय जीवन में कुछ भी स्वस्थ और सुन्दर नहीं है? उन घुन खाये इन्सानों के अन्दर कहीं भी मानवसुलभ कोमलता नजर नहीं आती? मानव की दृढ़ता का परिचय नहीं मिलता और गाँवों का जीवन क्या वास्तव में सुन्दर और ऊर्जस्वित मात्र ही है? झूठ, फरेब, चोरी और मक्कारी आदि की विडम्बनाओं से यह सर्वथा मुक्त है।

इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि आज की कहानी में हुए कुछ प्रयोगों के आधार पर जीवन के यथार्थ के सम्बन्ध में अपनी धारणा को संकुचित बनाकर हम जीवन के उत्तरोतर विकासमान रूप के साथ न्याय नहीं करते। जहाँ यह आवश्यक है कि लेखक अपने अनुभव– ज्ञेत्र से प्रेरणा ग्रहण करे, जिससे उसकी रचना जीवन के प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत कर सके।

पिछले पाँच–छः वर्षो में हिन्दी कथा –साहित्य के अन्तर्गत बहुत से ऐसे प्रयोग हुए हैं जिनसे साहित्य के इस अंग को नई दिशा और नई अर्थवत्ता प्राप्त हुई है। उपन्यास के क्षेत्र में 'बूँद और समुद्र' तथा 'परतीः परिकथा' जैसी कृतियों ने सर्वथा नए धरातल छूने में सफलता

प्राप्त की है तो कहानी के क्षेत्र में 'भाग्य रेखा' , 'डेक', ' परिन्दे ', 'जहॉ लक्ष्मी कैद है' ,' राजा निरबंसिया', 'डिप्टी कलक्टरी', ''बदबूदार गली', 'गुलरा के बाबा', 'शहीद' और 'कोसीका घटवार',जैसी रचनाओं ने नए मूल्यों की स्थापना का श्रेय प्राप्त किया है।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कथा साहित्य दो सर्वथा अलग–अलग धाराओं में बँट गया था जिनका प्रतिनिधित्व क्रमशः यशपाल और अज्ञेय की रचनाएँ करती हैं। यशपाल की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का उद्‌घाटन मिलता है तो अज्ञेय की रचनाओं में एक गुढ़ सांकेतिकता है, साथ ही भाषा का वह गुम्फन है जिससे भाषा की सार्मथ्य का विस्तार होता है। उपन्यास के क्षेत्र में ' मनुष्य के रूप' और 'नदी के द्वीप ' इन दो सीमाओं का संकेत देते हैं तो कहानी के क्षेत्र में 'प्रतिष्ठा का बोझ' एक दिशा है और 'साँप' दूसरी।

आज की कहानी कल की कहानी से बदल गयी है, इसमें सन्देह नहीं। यह परिवर्तन कहानी लिखने के ढंग में उतना नहीं है, जितना कहानी की वस्तु में और कहानी के दृष्टि–बिन्दु में।

पिछले दस वर्ष में कहानी– लेखकों की जो नई पीढ़ी आगे आयी है, उसमें जीवन के प्रति ईमानदारी का अधिक प्रबल आग्रह है। इस पीढ़ी के लेखकों ने प्रेमचन्द के सूत्र को पकड़कर उनके मार्ग पर बढ़ने का प्रयत्न भी किया है और कई नई पगडंडियाँ भी खोज निकाली हैं।

हम चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, भीष्म साहनी, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, मोहन चौपड़ा, कमल जोशी, कमलेश्वर, मार्कण्डेय और अमरकान्त आदि का उल्लेख कर सकते है। इनके अतिरिक्त और भी कई नाम लिये जा सकते है परन्तु नाम– परिगणना हमारा उद्देश्य नहीं है। कहानी लेखकों की यह पीढ़ी कहानी के लिए निरन्तर नए– नए धरातल खोज रही है और इस नाते निरन्तर प्रयोगशील भी है।

कविता

माँ

संयुक्ता गुप्ता
मोक्षदा बालिका ईन्टर स्कूल
भागलपुर

माँ...
तुम कहाँ हो
क्यों तुम मुझे छोड़ गई
इतनी निष्ठुर हो गई
तुम याद बहुत आती माँ...
तेरा फुसलाना, बहलाना
आलू की रोटी खिलाना
मेरा रोना, तेरा दुलराना
हाथों का थपथपाना
यादकर आँखे भर आती माँ...
तोड़ के तुम भावनाओं का जीवन
अपनों से दूर
सपनों से दूर
जीवन से दूर
छोड़ के मुझको
वेदना के मलिन
सिसकिओं के द्वार
छिन के मुस्कान
कहाँ गई माँ
आओं ना... डाँटो ना...
मेरी गलतियों पर
देखो तो जरा...
कैसे तुमको
भीगी आँखों से
गीले मन से
तुम्हारी ही बताई आँगन में
बदहवास सी तुम्हें ढूँढती माँ
बसंत छूता नहीं
दिवाली आती नहीं
छिप गई ज्योत्सना
तुम्हारे चाँद की
खुशियाँ मरीचिका बन
मुझ पर हँसती है माँ
आओ माँ...
मुझे सम्हालो माँ
तुम बहुत याद आती माँ!

समीक्षा

सभी रहें आबाद

(दोहा संग्रह)

राहुल देव
महमूदाबाद (अवध)
सीतापुर उ0प्र0

'दोहा सम्राट' श्री ए0बी0 सिंह एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति हैं। ' सभी रहें आबाद' आपकी इक्यावनवी कृति है। कवि ने पुस्तक का आरम्भ ही भारतवर्ष के आम आदमी को लेकर किया है। कृतिकार ने अपने विस्तृत 12 पृष्ठीय आमुख में ही एक सम्पूर्ण व सफल जीवन जीने का सार लिख डाला है। वह अपने देश को सर्वोपरि मानता है। उसे अपने देश की संस्कृति पर गर्व है। हमें अपने मानवधर्म को पालन हमेशा करना चाहिए। हम चाहे जिस धर्म के अनुयायी हों परन्तु हमें अपनी भारतीयता पर गर्व होना चाहिए। हमें स्वार्थ पर नहीं परमार्थ पर ध्यान देना चाहिए। कवि सुधार को एक अनवरत प्रक्रिया मानता है। हमें बदलते माहौल में जीवन मूल्यों को हमेशा याद रखना चाहिए। हमें धन को नहीं बल्कि गुणों को अधिक महत्व देना चाहिए। इस तरह विविध विषयों को समेटे हुए जीवन के नैतिक मूल्यों पर आधारित कविवर ए0 बी0 सिंह के ये दोहे अत्यंत सरल तथा जनसाधारण की भाषा में रचित है। कवि ने पुस्तक को भारत के आम आदमी को समर्पित किया है। पुस्तक में कुल 25 खंड है जिनमें 791 दोहे संग्रहीत हैं। पूरी किताब का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित रूप से दिया जा सकता है–

प्रथम खंड में रचनाकार ने श्रेष्ठ मानवीय गुणों को ग्रहण करने का सन्देश दिया है। वह बहती हुई जलधारा का उदाहरण देते हुए कहता है–

पावनधारा जिस तरह, वैसे रखें विचार
चाहे जाएँ जिस तरफ, सब का करना पार।

द्वितीय खंड में कवि ने हमें अपने आसपास के वातावरण से उचित सामंजस्य बनाये रखने के लिए प्रेरित किया है। हमें सदा अच्छे लोगों का साथ करना चाहिए तथा अच्छी–अच्छी बातों को, विचारों को फैलाना चाहिए। हमें उपकार करके उसे भूल जाना चाहिए। हमें हंसी– खुशी आपस में मिलकर रहना चाहिए। 'जियो और जीने दो' की भावना का उद्घोष ही इस खंड का प्रमुख उद्देश्य है

तृतीय खंड का शीर्षक है 'संघर्ष' कहा गया है कि बिना संघर्ष के जीवन जीने में कोई मज़ा नहीं। कवि ने भी उसी बात को आगे बढ़ाया है। उसके अनुसार हमें ऊँचे सपने देखना चाहिए तथा उन्हें पूरा करने के लिए सही राह पकड़कर संघर्ष करना चाहिए। इस प्रकार प्रयास करते रहने से हमारी प्रगति–उत्कर्ष निश्चित है।

अगला खंड गृहस्थी के एक प्रमुख स्थान 'रसोई' पर केन्द्रित है। कवि ने बड़ी कुशलता के साथ इस खंड के दोहों की रचना की है। चित्रात्मक भाषा तथा जगह–जगह अलंकारों का प्रयोग रचनाशीलता को गति देता है।

अगले खंड 'तारों की बारात ' में कवि का दार्शनिक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। अनुभवों की परिपक्वता ने अभिव्यक्ति को और सहज और सजीव बना दिया है। आगे के खण्डों में कवि अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहता है–

'थाली लोग सजा रहे , पूजा करते रोज ।
अगर प्यार मन में नहीं, रहे व्यर्थ हर खोज ।

देश के विकास में बाधक एक बड़ी समस्या है– प्रतिभा पलायन। कवि ने इस समस्या की ओर रेखांकित करते हुए कुछेक अच्छे दोहों की रचना की है जोकि पाठकों को भावनात्मक स्तर पर आंदोलित करते हैं।

नवें खंड 'घुँघरू' में कवि ने जीवन में संगीत की महत्ता पर प्रकाश डाला है। वह कहता है–

जीवन सुखमय बीतता, जो जाने संगीत
चारों तरफ बिखेरता , अपने मन की प्रीत।।
'मन को प्रिय लगते सदा, घुँघरू के हर बोल ।
मीरा मोहन प्रेम में, जब नाचे दिल खोल।।'

दसवां खंड 'खट्टा –मीठा' है। अधिकार और कर्तव्य पर कवि का यह दोहा कितना सटीक है–

कर्तव्यों को भूलकर, नहीं मिले अधिकार।
यह देता अधिकार जग, अपना काम सुधार।।

बारहवें खंड ' अग्नि परीक्षा ' कवि ने ऐतिहासिक उदाहरण देते हुए वर्तमान सामाजिक समस्याओं को दूर करने पर जोर दिया है। आगे के खंडों में भी कवि ने बड़े अच्छे तरीके से अपने विचारों को दोहों में पिरोया है–

' फूलों के व्यापार से, सदा महकता हाथ ।
अच्छाई जब मन रहे, सदा साथ दें नाथ।।'

संसार में धन की कमी सदैव सभी के पास बनी रहती है फिर चाहे कितना भी गरीब या अमीर क्यों न हो–

' धन की कमी सदा रहे , सब को इस संसार
चाहे एक कमा रहे, चाहे लाख हजार।। '

कहते हैं मानव जीवन बड़ी मुश्किल से मिलता है इसलिए ईश्वर को धन्यवाद देते हुए अपने जीवन के बहुमूल्य समय का सदुपयोग करना चाहिए–

' मानव जीवन मिल गया, करने को उपकार।
जो इसको है समझता, उसका बेड़ा पार।।'

हमें अपने ईश्वर को सदैव स्मरण करना चाहिए–

'बुरे वक्त में राम का, नाम बन सके ढाल।
इसको भजिये हर जगह, कोई समय निकाल।'

बीसवें खंड का प्रथम दोहा काफी अच्छा बन पड़ा है–

'मन में मंथन चाहिए, यह हीरे की खान।
पता नहीं किस जगह पर, क्या आ जाये ध्यान।।'

पठनीयता की दृष्टि से इक्कीसवां खंड 'परदेशी' सर्वाधिक प्रभावशाली है। कवि अपनी माटी के प्रति कितना अंधिक संवेदनशील है यह इस खंड के दोहों से स्पष्ट परिलक्षित होता है। अपनी मिट्टी से जुड़ा होना कवि की यह विशेषता उसे समकालीन रचनाकारों की परम्परागत शैली से थोड़ा अलग खड़ा करती है। पुस्तक के पच्चीसवें यानि अंतिम खंड 'प्रकीर्ण' में कवि ने विभिन्न राष्ट्रीय , सामाजिक समस्याओं परम्परागत मान्यताओं– रूढ़ियों पर कुठारघात करते हुए प्रत्येक जन को संबंधित जीवन को जीने का संदेश दिया है। इस प्रकार हम अपने परिवार , समाज व राष्ट्र को ऊँचा उठा सकते हैं तथा इसी में हमारे मानव की सार्थकता व सुखी जीवन का रहस्य सन्निहित है।

पुस्तक का मुद्रण साफ़ सुथरा तथा मुखपृष्ठ आकर्षक है। कुल मिलाकर हर दृष्टि से शीर्षक ' सभी रहें आबाद' सार्थक प्रतीत होता है।

कविता

समय बहुत खराब है

डॉ0 गिरिजा शंकर मोदी
भागलपुर

समय बहुत खराब है दोस्तों!
रास्ता नागों से भरा है
चलने में परहेजी की चूक
दंश के सिवा कुछ भी नहीं है

अब न रास्ते प्रशस्त हैं
न नदी के धार निर्मल है
न हवा स्वस्थ है
और न ही वृक्ष छायेदार हैं

गलियाँ अब खून से सराबोर हैं
नालों में लाश ही लाश है
चाकूमारों की मुहिम तेज है
नुक्कड़ अब बम और पिस्तौल है

आदमी अब हिन्दु और मुसलान है
आदमी अब धर्म का ठेकेदार है
आदमी अब गुलाम और सामन्त है
आदमी अब गुट और आतंक है

आदमी कुछ चुप है तो वह
आदमी में ही लिपट अमर वेलि है
आदमी कुछ शांत है तो वह
मौत के दस्तक से दुबका है।

काल मार्क्स अर्थाभाव के कारण अपने बच्चे का इलाज नहीं करा सके थे किन्तु मानवता के हित में मनुष्य को समान रूप से पेट भर भोजन मिले ,तन ढकने को वस्त्र मिले– इसके लिए अपने विचारों को जन–जन तक पहुँचाने हेतु जब उन्हें पुस्तक लिखनी पड़ी और उसके लिए कागज लाना था जब अपना कोट भी बेच दिया और पत्नी से कहा 'इन मेरी लिखी पुस्तकों से प्रेरणा पाकर विश्व के करोड़ों बच्चों का दुःख दूर होगा।

समीक्षा

छायावाद : युग बोध

दयानन्द जायसवाल
भागलपुर (बिहार)
मो0 9931240303

किसी भी साहित्य – धारा को समझने के लिए उसके युग का अध्ययन अनिवार्य होता है। युग की विषमताएँ और आकांक्षाएँ साहित्यकार के माध्यम से उसके काव्य को स्वरूप तथा आधार प्रदान करती हैं। साहित्यकार ही नहीं चिंतक और विचारक भी अपने युग की सीमाओं के भीतर ही कार्यशील होते हैं और उनमें युग की चेतना ही पूंजीभूत होती है तथा आकार लेती है। कतिपय साहित्यकार अपने देश की प्राचीन संस्कृति के प्राणवन्त मूल्यों का अन्वेषण कर उनके नये युग के निर्माण में प्रयोग करते हैं तथा कोई किसी विदेशी चिन्तन – धारा से प्रभावित होकर नये युग के स्वप्न तराशने लगते हैं। छायावाद युग की काव्यधारा को समझने के लिए उस युग के लोक जीवन को भी समझना होगा और उन तत्वों एवं मूल्यों के स्रोत तथा स्वरूप पर भी प्रकाश डालना हेगा जो इस काव्य धारा के आदर्श बन सकें।

हिन्दी साहित्य का छायावाद आलोचना –जगत में काफी विवाद ग्रस्त रहा है। इसका कारण यह है कि जहाँ यथार्थवाद, आदर्शवाद, प्रगतिवाद ऐसे नाम हैं जिनके आधार पर इन वादों के अन्तर्गत स्वीकृत रचनाओं के बुनियादी स्वरूप को आसानी से समझा जा सकता है वहाँ 'छायावाद' शब्द किसी ऐसे स्पष्ट अर्थ का बोध नहीं करता जिसके आधार पर छायावादी काव्य की विशेषताओं को समझा जा सके। अपितु, छायावाद के अर्थ को समझने के लिए हमें इन प्रवृत्तियों को जानने का प्रयास करना होगा जो छायावादी काव्य में पायी जाती है। छायावादी में शैलीगत विशेषताओं के साथ–साथ प्रेम सौंन्दर्य आदि भावनाओं को भी स्वीकार किया जाता है। जबकि अव्यक्त निराकार प्रिय के प्रति प्रणय – निवेदन को रहस्यवाद की मूल विशेषता माना जाता है। यद्यपि प्रसाद ने रहस्यवाद को अध्यात्मवाद और विशेषतः शैव दर्शन के साथ सम्बन्ध करने का प्रयास किया, किन्तु उनकी वह व्याख्या सर्वमान्य न हो सकी। विषय –वस्तु की दृष्टि से रहस्यवादी भावना का आलम्बन अमूर्त निराकर ब्रह्म है जो सर्वव्यापक है, वहाँ छायावाद का विषय लौकिक ही होता है।

छायावादी काव्य के मूल स्वरूप को समझने के लिए उसे ऐतिहासिक संदर्भ में रखकर देखना अनिवार्य है। द्विवेदी युगीन काव्य विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल था। इसके विपरीत छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ और कल्पना प्रधान है। प्रसाद, निराला आदि कवियों ने अधिकतर अपने सुख–दुःख की अनुभूति को ही मुखर किया है, मनोजगत की गहराई को वाणी में संजोने का प्रयत्न किया है जबकि मनोजगत का सत्य सूक्ष्म होता है जिसे सर्जना द्वारा साकार करने के लिए छायावादी कवियों ने उर्वरा कल्पना शक्ति का उपयोग किया है। इनकी कविताओं में प्रणय से युक्त विविध मानसिक अवस्थाओं–आशा, आकुलता, आवेग, तल्लीनता, निराशा, पीड़ा, अतृप्ति, स्मृति, विषाद आदि का अभिनव एवं धार्मिक चित्रण मिलता है। यहाँ कवि और पाठक की चेतना का बीच अनुभूति के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता की स्थिति नहीं है। स्वानुभूति के सम्प्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि कवि उसे निजी संबधों और प्रसंगो से मुक्त करके लोक सामान्य अनुभूति के रूप में प्रस्तुत करे।

हिन्दी में आधुनिक कवियों की जो त्रयी मानी गई उसमें प्रथम नाम जय शंकर प्रसाद का आता है। दूसरा नाम है सुमित्रानन्दन पंत और तीसरा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला। इस बृहत्रयी को छयावादी कवि का शीर्षक दिया गया। बाद में समीक्षकों ने इन तीनों के साथ महादेवी वर्मा को भी जोड़कर चतुष्टयी बना दिया।

निराला, प्रसाद और पन्त की अधिकांश सौन्दर्य परक कविताओं में नारी के रूप– सौन्दर्य से ही अरूप सौंन्दर्य भी मिलता है। नारी के इस अरूप सौन्दर्य को हम मनोमय लोक का सौन्दर्य भी कह सकते हैं। जहाँ रूप , गन्ध, शब्द, रस और स्पर्श– सभी निर्विकार हो जाते हैं, तब यह आध्यात्मिक सौन्दर्य का पर्याय हो जाते हैं। छायावादी काव्य की चेतना व्यक्तिनिष्ठ और सूक्ष्म होते हुए भी मूर्त उपकरणों द्वारा व्यंजित की गई है। जैसे ही हम मूर्त उपकरणों का उल्लेख करते हैं, हमारा ध्यान छायावादी चेतना के सौन्दर्य पक्ष की ओर आकृष्ट हो जाता है। जिस प्रकार प्रसाद ने 'संकल्पनात्मक अनुभूति ' की व्याख्या करते हुए ' मूल चारूत्व' की बात की है, उसी प्रकार महादेवी

भी सत्य को काव्य का साक्ष्य मानती है और सौन्दर्य को उसका साधन। सौन्दर्य के स्वरूप पर विचार करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका प्रधान स्रोत प्रकृति है। इन छायावादी कवियों ने प्रकृति सौन्दर्य को तीन माध्यमों से उपस्थित किया है– चित्रधर्मी, भावधर्मी और संगीत धर्मी। प्रकृति सौन्दर्य और नारी– सौन्दर्य के प्रति एक तादात्म दृष्टि रहने के कारण छायावादी कविता में प्रायः प्रकृति सौन्दर्य पर नारी के रूप और क्रिया –कलाप आरोपित है। उसमें मानवीयकरण के सहारे प्रकृति– सौन्दर्य का मूर्त चित्रण मिलता है। नारी – रूप का मिश्रण सभी उपमानों को नारी की कोमलता से संपृक्त कर दिया गया है। पन्त ने प्रकृति सौन्दर्य के दर्शन नारी – रूप के गवाक्ष से किया है। कवि को यह विश्वास हो गया है कि उसकी प्रिया की छविमयी छटा ही प्रकृति – सौन्दर्य के रूप में फैल गयी है–

''आज मुकुलित कुसुमित सब ओर,
तुम्हारी छवि की छटा अपार
फिर रहे उन्माद मधु प्रिय भौंर,
नयन पलकों के पंख पसार ।''

किन्तु हम छायावादी कविता में नारी– रूप और प्रकृति सौन्दर्य को एक –प्राण कर देने की जो प्रवृत्ति पाते हैं, वह आचार्य शुक्ल को पसन्द नहीं है। इनकी धारणा है – '' सौन्दर्य की भावना सर्वत्र स्त्री का चित्र चिपकाकर करना खेल सा हो जाता है।'' प्रकृति की नाना वस्तुओं का अपना– अपना अलग सौन्दर्य भी है, जो एक ही प्रकार की वस्तु द्वारा अभिव्यक्त नहीं हो सकता । किन्तु नारी का सौन्दर्य सीमित सौन्दर्य है, लेकिन उसी के माध्यम से असीम और दिव्य सौन्दर्य का भी प्रत्यक्ष हो सकता है। अतएव छायावादी कवियों के काव्य में नारी के शारीरिक सौन्दर्य के अनेक मोहक चित्र प्रणय की कविताओं में मिलते हैं। प्रसाद–कृत 'आँसू' तथा ' कामायनी' में प्रस्तुत किया गया नायिका का सौन्दर्य या पन्त– कृत 'भावी पत्नी के पति' में व्याप्त नायिका का सौन्दर्य लक्षित होता है। निराला की ' सुन्दरी' पन्त की 'नौका बिहार' आदि कविताओं का उल्लेख इनमें किया जा सकता है, जबकि कामायनी का प्रलय– वर्णन निराला की 'बादल– राग' कविता तथा पन्त की 'परिवर्तन' जैसी रचनाओं में प्रवृति के कठोर रूपों का चित्रण भी मिलता है। इसमें संदेह नहीं कि छायावादी भाव–बोध स्वानुभूति और सौन्दर्य प्रधान कल्पना द्वारा ही निर्मित हुआ है। अनुभूति की प्रधानता में यह कल्पना को काव्य–विकास की अनिवार्यता माना है। साहित्यकार कल्पना को ही सौन्दर्यमय आकार देते हैं। सुन्दर कल्पना का अस्तित्व किसी को नहीं अखरता। डॉ0 राम कुमार वर्मा ने प्रकाश डाला है कि '' कल्पना साहित्य की सृजन शक्ति है। जिस प्रकार ब्रह्म माया के माध्यम से अखिल विश्व की सृष्टि करता है, उसी प्रकार प्रतिभा सम्पन्न लेखक या कवि कल्पना के सहारे साहित्य में सौन्दर्य की सृष्टि करता है। '' इस तरह प्रत्येक छायावादी कवि अपनी रूचि और परिवेश के अनुकूल अलग– अलग कल्पना–लोक का स्रष्टा बन बैठा। यही कारण है उसका पूर्ण परितोष नहीं होता और वह आत्मा तक पहुँच जाती है। प्रसाद की अनुभूति शैवदर्शन में परिणत होती चली जाती है, निराला अद्वैत और भक्ति के क्षेत्र में साधना करते दिखाई देते हैं, पन्त की काव्य– दृष्टि सृष्टि में व्याप्त मूल अक्षर सत्य का उद्घाटन करती है और महादेवी निराकार सर्वव्यापक प्रिय की भावना को ही काव्य का प्राण मानती है। महादेवी के सभी काव्य– संग्रह भावात्मक कल्पना का सुन्दर निदर्शन है।

प्रकृति– चित्रण, सौन्दर्य– स्वरूप आध्यात्म आदि के समन्वय की बेचैनी छायावाद में कोई ठहराव नहीं आने दी तथा रहस्यात्मकता, आदर्शवादिता, जीवन–दृष्टि एवं समाजवादी– दृष्टि से कोसों दूर काव्यत्मक दृष्टि से सपाट दीखने लगे। निराला की छायावादी कविताओं में उनके लोकोन्मुख व्यक्तित्व प्रारंभ से ही झलकते हैं। निराला की इस अवधि की कविताओं में उनकी जीवनानुभूति के जो स्वर उभरें उनमें टूटन और परायज भी थी। यह प्रवृति कवि का भक्ति की ओर उन्मुख करती है । साथ ही कवि का असन्तुलित मानस–प्रेम, भक्ति, खुलेपन और उलझाव का कुछ ऐसा मिश्रित रूप प्रस्तुत करता है कि वे कविताएँ उलझे प्रभाव से ग्रस्त होती गई है। पन्त जी के इस काल के काव्य– साहित्य का विश्लेषण किया जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि अपने चिन्तन और विषय में अधिक विकासशील रहे किन्तु ये मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जन –जीवन के सत्यों की ओर उन्मुख भी हुए। इन्होंने मार्क्सवादी दर्शन को चिन्तन के स्तर पर स्वीकार किया और प्रायः व्यक्त भी किया –

'' कहता भौतिकवाद वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अन्तर दर्पण,
स्थूल सत्य आधार सूक्ष्म आधेय , हमारा जो मन,
वाह्य विवर्तन से होता युगपत् अन्तर परिवर्तन।''

कवि आरम्भ के ही मनुष्य– मात्र के सुख, प्रेम, शंति का स्वप्न देखता रहा है। इस वायवी स्वप्न को उसने रूप देना चाहा तो मार्क्सवाद में उन्हें आलोक दिखायी पड़ा, किन्तु उन्हें ऐसा लगा कि मार्क्सवाद एकांगी है, केवल भौतिक योगक्षेम की व्यवस्था कर सकता हैं। अतः कवि उसे आवश्यक मानते हुए भी पर्याप्त नहीं मानता और अरबिन्दवाद में भौतिकवाद तथा आध्यात्मवाद का समन्वय ढूँढते हैं । कवि ने ' स्वर्ण किरण' स्वर्णधूलि, 'शिल्पी' 'लौकायतन' आदि परवर्ती कृतियों में इसी समन्वय को स्वर दिया है, इस विकास यात्रा में पन्त का काव्य– पक्ष आहत

हो गया है। यही कारण है कि वे मानव समाज की समस्याओं, उनके समाधान और नये विचारों को आंकांक्षा के स्तर पर स्वीकार करते हैं; अनुभूति के स्तर पर नहीं । इसलिए पन्त के काव्य को स्मृद्ध बनाने में कोई सहायक नहीं हुए।

जयशंकर प्रसाद छायावाद के स्वरूप– निर्धारण में इतिहासबोध, दर्शन सम्मत मानवीय विश्व दृष्टि, गहराई ,बौद्धिकता, भारतीय अस्मिता की मौलिक पहचान , उदात्त भाव– चेतना, समकालीन राष्ट्र जागरण के स्वर और मार्मिक संवेदना को शमिल किये हैं। इन्होंने छायावाद को अन्तर्दृष्टि, युगबोध विधान से कथ्य प्रस्तुत किये हैं। इनकी कल्पनाशीलता , प्रेम, सौन्दर्य आदि की प्राथमिकता यथार्थ चेतना का सर्जक रूप है। प्रसाद का चिन्तन – केन्द्र आत्मवाद है, जो समाजवाद की रूढ़ियों से व्यक्ति की रक्षा भी करता है और उसे समतावादी मनुष्य भी बनाता है। ये मनुष्य के भीतर बची – खुची संवेदना को नष्ट होने से बचाने का प्रयास करता है। ऐसी ही इनकी कहानी 'आकाशदीप' है जिसकी समूची भाव–यात्रा कोमलता के हाथों कठोरता की पराजय का सर्जक विधान है। प्रसाद एक संश्लिष्ट कवि हैं।

इनका साहित्य इसलिए कालजयी है कि वह अपने समय में प्रासंगिक था तथा आने वाले समय में भी किसी–न–किसी अर्थ में अनिवार्य तथा मूल्यवान रहा। प्रसाद– साहित्य की गूढ़ परीक्षण से पता चलता है कि उन्होनें तथ्यों की परिकल्पना को निरस्त कर सर्जनात्मक परिकल्पना को तथ्यात्मक बनाया है। वे तथ्य की आधारभूमि से कल्पना को विश्वसनीय बनाते हैं। अगर धर्मशास्त्र और विभिन्न ऐतिहासिक प्रमाणों के बिना प्रसाद ध्रुवस्वामिनी का मोक्ष और पुनर्विचार करा देते तो इसे सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सच्चाई कौन मानता? उन्होंने इतिहास को महत्व दिया तो इसलिए कि वे दुराग्रही नहीं थे कि परम्परा के गतिशील , प्रेरक तत्वों से इनकार कर देते।

शुक्ल जी ने छायावाद की पाँच विशेषताएँ बतायीं– रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना का लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तु विन्यास की विश्रृंखलितता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना । छायावाद की घटना सांकेतिकता, शिल्प को नयी भंगिमा शब्द–चयन में बारीकी, कोमलता बरतने की कोशिशें, विकलता, दर्शन, रहस्य का आभास और सामाजिक तथा साहित्यिक कुतूहल आदि की अभिव्यक्ति से परिलक्षित होती है। प्रसाद– साहित्य में भी व्यक्त प्रेम सौन्दर्य अतीनिद्रयता, कोमलता और मिठास किसी–न –किसी जीवन की अनुभूति को प्रकाशित और परिष्कृत करता है। इन्होंने कामायनी से त्रिकाल को अद्भूत प्रकार से जोड़ा है। इसके 'काम' को जो भौतिक स्तर पर स्थूल भोग– क्रिया, अतृप्त आग है और 'अयनी' उसे आश्रय देने वाली, लेकिन यहाँ सबसे अलग सौभाग्याकांक्षिणी – कन्या का पिता है । काम के फलक को विस्तृत करते हुए एवं उसमें अपूर्व आयामों को समाहित करते हुए प्रसाद ने इसे विलक्षण बना दिया है। वे विशुद्ध रूप से भारतीय लेखक हैं, उनके सारे स्रोत भारतीय हैं, जो एक लोक –अनुभव के निजी–स्रोतों से मिलकर यथार्थ को अपनी मौलिक , व्यावहारिक स्थितियों का साक्षात्कार कराते हैं। अपनी कला की जमीन पर खड़े हो कर मानवीय अन्याय को ललकारते, संवेदन और समता को पुकारते हैं। इनकी भाव चेतना पाठकों के अदृश्य कुहासों को चीर कर सत्य से साक्षात्कार कराती है।

कवयित्री महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा' में उनकी क्रमागत भावधारा का ही उत्कर्ष दिखायी पड़ता है। प्रेम उनका मुख्य विषय है। कवयित्री ने संयोग और वियोग में उभरने वाले प्रेम के अनेक कोणों को अपने अनुभव के आलोक में देखा है। वेदना महादेवी की मूल संवेदना है; यह वेदना विरहजन्य है। करूणा वेदना और निराशा से आक्रांत इनका आरंभिक काव्य 'दीपशिखा' में कुछ अलोक पा सकते हैं– आशा का, उल्लास का, मिलन का।

–'सब बुझे दीपक जला लूँ
घिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जला लूँ।

x x x x

''हुए शालू अक्षत मुझे घूलि चंदन
अगरु धूम सी साँस सुधि गंध सुरभित।''

महादेवी में गीतकाव्य के उत्कर्ष की सुन्दर भावनाएँ हैं, लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुछ कुण्ठित कर देता है। कवयित्री के पास सीमित संभावनाएँ हैं, उन्हें वह भिन्न–भिन्न प्रतीकों और रुपकों से व्यक्त करती हैं। ये प्रतीक और रुपक भी सीमित और अभिजात हैं। कवयित्री की लौकिक संवेदनाएँ रहस्यवादी अभ्यास से लिपट कर निश्चय ही नये अर्थ का विस्तार करती है, किन्तु साथ ही अपनी लौकिक मूर्त्तता प्रत्यक्षता और तीव्रता खो देती है। दीप, चंदन, मंदिर, क्षितिज, आकाश, करुण, धूल, मेघ, विद्युत, सागर आदि प्रतीक और शब्द बार–बार आते हैं एवं रहस्यात्मक संकेत में उलझ जाते हैं। इस निजी और छायावादी सीमाओं के बाबजूद महोदवी जी छायावाद की विशिष्ट और समर्थ कवयित्री हैं।

इस प्रकार छायावादी कवियों की दृष्टि और विषय निजी सुख–दुख के आवेग से संबद्ध भावनात्मक प्रतिक्रिया, आत्म संपृक्ति, उत्तेजना, सौन्दर्य और प्रेम तथा तत्जन्य उल्लास एवं विषाद की अनुभूति है।

कहानी

दुंदुभी बजने लगी

धर्मेन्द्र कुसुम
जहाज घाट रोड, आदमपुर
मो0. 09934891141

'' ई कलेसरा ने कैसे नोमनेसन कर दिया रे?''– झूलन सिंह ने मूंछ पर लगी ताड़ी की झाग को अंगोछे से पोछते हुए सतीश से पूछा।

'' सुने कि ओकरा आप ही ठड़ा किये हैं, नितो बाबू को हराने के लिए।''

सतीश ने ताड़ी हलक में उतारने के बाद ग्लास नीचे रखते हुए कहा। जबाब सुनकर झूलन सिंह सकपकाये और चारों ओर देखकर हौले से बोले–''बात तो ठीके है लेकिन ई तुम कैसे जान गया रे छतीसबा?कौन बताया तुमको?''

'' के बताएगा। अपने जान गये। हम कि बुड़बक हैं, जो एतनी छोटी बात भी नही बूझेंगे। डेग–डेग पर नितो बाबू के विरोध के चलते आपकों केतना नुकसान हुआ है, सभ्भे जानते हैं हम। फेर उनको काहे नहीं हराने का कोशिश करियेगा आप। बढ़िया गोटी खेले हैं। तरे–तर आपके मदद से कलेसरा बन जाएगा मुखिया और नितो बाबू चारो खाने चित।''– सतीश ने नमक लगी मिर्च को हौले–हौले दांत से कुतरते हुए यह बात इस गर्वीले अंदाज में कही जैसे वह बहुत सी रहस्यमयी बातों की जानकारी रखता हो।

इस पर झूलन सिंह ने सतीश को समझाया–''कलेसरा को पंचायत चुनाव में ठड़ा करने से दू गो फैदा है हमकों। जीत गया तो मुखियागिरी हमरा नाम उसका कमाल मेरा और कहीं हार गया तो कलेसरा हारेगा, हम तो नहीं न। हमरा नाक तो बचले रहेगा और कलेसरा का नाक ..... हा....हा....हा....हा...ओकरा तो नाके नै है तो कटेगा क्या?

इस बीच कागज के ठोंगे में थोड़ा– सा दालमोट लेकर पहुंचे भुटका ने खाली लबनी देखकर झूलन सिंह ने पूछा'' एक लबनी आरू लानियै की मालिक?''

'' नै, अब छोड़ दो, ढेर हो गया है। जादे होने पर नयागांव वाली गोस्सा जाती है। खास करके जहिया बाबूजी जागे रहते है, तहिया और जोर–जोर से गोसाती है। केतनो समझाते हैं कि धीरे से बोलो, बाबूजी सुन लेंगे तो बिगड़ेंगे, तैयो नै मानती है। कहती है हां–हां सुनाऊंगी, बाबू जी डाटेंगे तब्बे आप छोड़बो कीजियेगा। हमरा तो हालते खराब हो जाता है। किसी तरह पटिया–पटिया कर शांत करते हैं तब्बे चुप होती है।'' झूलन सिंह के मुंह से मालकिन की बात सुनकर भुटका खी–खी कर हंसने लगा। सतीश भी मुस्कराया लेकिन बातचीत के क्रम में तीखी मिर्च का बड़ा टुकड़ा खा लेने से उनकी आंखे छलछला गयी थीं।

खोनवाडीह आदिवासी टोले से सटे तरबन्ना में लगी थी यह बैठक। झूलन सिंह ने भुटका से पूछा–'' तुम केकरा वोट देगा रे भुटका?''

'आपने जेकरा कहबै, औकरै न भोट देबै मालिक, हम्मे सब ते आपनै के गुलाम छिकियै।'' भुटका ने सेवकत्व भाव से जवाब दिया। झूलन सिंह जवाब सुनकर प्रसन्न हो गये। तभी समीप के केला बागान से दो छायाकृति सरसराती हुई बाहर निकली शाम के धुंधलके के बाबजूद छायाकृतियों के कुछ पास आने पर स्पष्ट हुआ– एक औरत थी, एक मर्द। औरत तरबन्ना में तीनों को देखकर क्षण भर के लिए ठिठकी फिर तेज–तेज कदमों से आगे बढ़कर टोले की ओर सरपट दौड़ पड़ी। मर्द निःसंग भाव से बैठक की ओर ही बढ़ा। तीनों ने एक साथ उसे पहचान कर पूछा–' अनिरूद्ध जी हैं?''

''हां–हां अनिरूद्ध ने जवाब दिया। सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन अथवा अगमनागमन के पश्चात की स्वाभाविक शर्मिंदगी और क्षोभ भावना से मुक्त किसी ढीठ की तरह वह भी बैठक में शामिल हो गया। तीनों में किसी ने उससे यह पूछा भी नहीं कि वह उस महिला के साथ इतनी देर गये केला बगान में क्या कर रहा था। बिना कहे–सुने सब ने सब कुछ मन ही मन समझा और सामंती सोच के कारण शायद गर्वोन्नत भी हुए। एक लबनी ताड़ी फिर मंगाई गई । शाम देर तक रंगीन होती रही। रात गहरी हो जाने पर सभी लड़खड़ाते– बहकते अपने–अपने घर चले गये ।

उसी शाम निताई सिंह के दरवाजे पर भी बैठक लगी थी। चुनाव की रणनीति पर देर तक विचार विमर्ष हुआ। निताई सिंह को कालेश्वर मंडल के चुनाव में खड़े होने और जीत–हार का गम न था, लेकिन फूलन सिंह की अनावश्यक

प्रतिशोधात्मक चाल से वे क्षुब्ध थे। कालेश्वर मंडल के चुनाव में खड़े होने के पीछे झूलन सिंह का हाथ होने का स्पष्ट प्रमाण न मिलने के बावजूद तीन–तीन बार मुखिया के पद पर निर्विरोध निर्वाचित हुए निताई सिंह सबकुछ समझ ही गये थे।

आखिरकार गंगा सिह ने राय दी '' झूलन बाबू के चलते कलेसरा ने नोमनेसन किया है। लेकिन अभी इस पर सोच–विचार करने या लड़ने का टैम नहीं है। शांति से काम निकालना होगा।'' बैठक में शामिल सभी लोग उनकी बातों से सहमत हुए। तय हुआ कि पंचायत के सभी टोले से एक–एक प्रत्याशी को चुनाव मैदान में उतार दिया जाय। इससे अन्य जाति के बोट सबों के बीच बंट जायेंगे और झूलन सिंह दस पांच प्रतिशत राजपूतों का वोट कालेश्वर मंडल को दिलवाने में सफल हो जायें तो भी केवल अपनी ही जाति के वोटों से निताई सिंह आसानी से जीत जायेंगे।

वही हुआ। अगले दिन निताई सिंह के समर्थकों ने यादव टोला के दिलीप यादव ,मुस्लिमटोला के बदरूद्दीन अंसारी, ब्राह्मण टोला के किशोर झा, भुमिहार टोल के पवन चौधरी ,कमार टोल के जीवन शर्मा और आदिवासी टोला के गिरेन्द्र हांसदा से अलग–अलग मिलकर यह कहकर नामांकन करवा दिया कि वे उसे ही वोट देंगे। निताई सिंह के समर्थकों की चाल समझे बिना मुखिया बनने की लालसा में सभी चुनाव मैदान में उतर गये।

चुनाव प्रचार प्रारंभ हुआ। घर–घर जाकर प्रत्याशियों ने मतदाताओं से संपर्क किया। निताई सिंह के समर्थक जहां कार्य की उपलब्धि, कर्मठता, ईमानदारी आदि के लिए निताई सिंह को जिताने की अपील कर रहे थे, वही अलग–अलग जाति के मतदाता अपनी–अपनी जाति के प्रत्याशियों को जिताने के लिए गोलबंद हो रहे थे। जबकि झूलन सिंह ने कालेश्वर मंडल को जिताने के लिए तिजोरी के दरवाजे खोल दिये थे। चुनाव में फुलन सिंह की ओर से सुरा–सुन्दरी और बूथ लुटेरों का जमकर उपयोग हुआ। नतीजन ,निताई सिंह के उपलब्धियों ,अच्छाईयों और सारी कोशिशें के बावजूद झूलन सिंह की तिकड़म की वजह से कालेश्वर मंडल ने ही चुनाव जीता। अन्य प्रत्याशियों की जमानत जब्त हो गई।

विजय जुलूस निकला। ''कालेश्वर मंडल– जिन्दाबाद'' के नार लगे। लोगों ने उसे फूल मालाओं से लाद दिया। निताई सिंह दुःखी और झूलन सिंह प्रसन्न हुए। आनन– फानन में एक सभा आयाजित हुई। भाषण देना न जानते हुए भी कालेश्वर मंडल ने वादा किया– '' देवी का चौड़ा पक्की करवाऊंगा, सब टोला तक पहुंचने के लिए सड़क बनेगा, टूबेल का कोय दिक्कत नैं होगा, चोरी–चमारी पूरा बंद , कोय किसी के साथ जूलूस जबरदस्ती नैं करेगा।'' नारा समवेत स्वर में फिर गूंजा–'' कालेश्वर मंडल– जिंदाबाद, जिन्दाबाद–जिन्दाबाद।'' कालेश्वर मंडल ने सभा मंच पर ही झूलन सिंह का पांव छूकर आर्शीवाद लिया। झूलन सिंह पहले से थोड़ा ज्यादा अकड़ गये।

चुनाव परिणाम के दिन आम सभा के बाद शाम में ताड़ी बगान में जमकर बैठकी लगी थी– झूलन सिंह, कालेश्वर मंडल, अनिरूद्ध, सतीश, भुटका आदि के साथ मुड़कटवा गिरोह के सरगना टिक्कर सिह, जब जमा हुए थे। उस दिन ताड़ी के साथ अंग्रेजी शराब के कार्क भी खुले थे। खस्सी के मांस के साथ खोनवां की चाची ने कुल्हे मटका–मटकाकर बड़े बड़े पैग पेश किये– सभी आनन्दविभोर होकर देर रात को अपने घर लौटे।

उस रात कालेश्वर मंडल के टोले में रात भर ढोल मंजीरा बजता रहा था। जिसकी धुन सुन–सुन अपने घर में लेटे झूलन सिंह पुलकित– प्रफुल्लित होते रहे थे।

कुछ महीने बीते। धीरे– धीरे सबों को कालेश्वर मंडल का ''मुखिया जी'' कहने की आदत लग गई। गांव के बड़े बुजुर्ग भी अब उसे ''कलेसरा कहने की हिम्मत न जुटा पाते।

इंदिरा आवास योजना , समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, सामाजिक सुरक्षा योजना, मनरेगा, सोलर लाईट सबकुछ पर झूलन सिह की मर्जी। कालेश्वर मंडल को वे जहां –तहां कहते अंगूठा निशान लगाते रहता। झूलन सिंह ने सभी योजनाओं में कमीशन खाकर भी केवल अपने समर्थकों को इन योजनाओं का लाभ दिलवाया। उनके सभी खेतों की ओर जाने के लिए सड़के बन गईं– लेकिन टोले–मुहल्ले उपेक्षित ही रहे। कभी–कभी कालेश्वर मंडल ने कुछ कहना भी चाहा लेकिन कह नही पाया। कुछ माह बीते होगे, जब झूलन सिंह की हदबंदी से फाजिल जमीन की दुबारा जांच हुई। फर्जी सगे संबंधियों के नाम से दर्ज करीब बीस एकड़ जमीन उनके पास अतिरिक्त पाई गई। सरकार की ओर से इस जमीन को लालकार्ड के रूप में भूमिहीनों के बीच वितरित कर दिया गया।

झूलन सिंह लाल कार्ड बंटने के बावजूद प्रसन्न थे कि मुखिया निताई सिंह नहीं बल्कि कालेश्वर मंडल है अर्थात् वे खुद हैं। किसी भी हालत में लाल कार्डधारियों को जमीन पर दखल नहीं लेने देंगे। इस बीच पूर्व में भू–हदबंदी से फाजिल वाली बटी उनकी जमीन पर लाल कार्डधारियों द्वारा लगाई गई केले की फसल तैयार हो चुकी थी। लाल कार्डधारियों को जमीन से बेदखल करने की नीयत से झूलन सिंह ने कालेश्वर मंडल के साथ मिलकर रातोंरात करीब बारह बीघे में लगी केले की फसल नष्ट करवा दी।

सुबह कोहराम मच गया। किसने फसल उजाड़ी, किसी को कुछ पता नहीं चला लेकिन जिसकी फसल नष्ट हुई थी, उसके परिवार पर मानो व्रजपात ही हो गया था। सिसकियों और करूण क्रन्दन से कालेश्वर मंडल का कलेजा सिहर गया। उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी– न्याय की कुर्सी पर बैठकर इतना बड़ा अन्याय!... पाप.....घोर पाप.... महापाप!.....नरक में भी जगह नहीं!... सब दिन नेक, ईमानदार, सच्चिरित्र रहकर भी केवल मुखियागिरी के लिए ऐसा दुष्कर्म....छिःछिः!.... अपने ही लोगों के साथ ऐसा अनर्थ। .... नहीं–नहीं, अब ऐसा कुछ नहीं करेगा वह, भले मुखियागिरी छूट जाय।.... अगले चुनाव में वह खड़ा ही नहीं होगा.... लेकिन अब कोई पाप नहीं करेगा वह!... उफ! वह बिफर गया। शाम में झूलन सिंह ने उससे उसकी उदासी और चिंता के विषय में पूछा लेकिन जवाब नहीं दिया उसने। गुमसुम– चुपचाप खड़ा अपने आप से ही लड़ता रहा वह ।

कालेश्वर मंडल के टोले में उस रात भी नित्य की भांति ढोल–मजीरे बजे। लाल कार्ड वाली जमीन की फसल नष्ट करने और इतनी बड़ी घटना में अपना नाम न खुलने से प्रसन्न झूलन सिंह आनन्दातिरेक में दो लबनी ताड़ी अकेले गटक कर अपने बिस्तर पर लेटे थे। नयागांव वाली ने भी आज उन्हें बदली–बदली सी लग रही थी। जिस धुन से वे नित्य प्रसन्न होते थे, वह उन्हें चुभती हुई महसूस हो रही थी। या, शायद आज धुन ही बदल गई है, वे समझ नहीं पा रहे थे। धुन समझने के ख्याल से उन्होंने आवाज पर गौर किया। उन्हें लगा– ढोल मजीरे की आवाज बंद हो गई है और दुंदुभी बजने लगी है। वे सिहर उठे, उनका कलेजा दहल गया। शाम में कालेश्वर मंडल की खामोशी का सबब अब उन्हें समझ में आया। बरसाती ठंड के बावजूद वे पसीने से नहा उठे। लगा उनके हाथ का तोता उड़ गया है और ढेर सारे बाज उनके कमरे में फड़फड़ाने लगे हैं।

कविता

बारिश की बूंदें

नताशा
भागलपुर

इस समय
छिन चुका है चाँद से
परियों का बसेरा
और बच्चे भी तोड़ चुके हैं
किस्सागोई का जाल
वहाँ की पथरीली जमीन पर
वे बल्ला घुमाने की सोच रहे हैं
इस समय
बारिश की बूंदें
नहीं रह गई हैं किसी नायिका के
काम भाव का उद्दीपक
और बसंत से नहीं कोई शिकायत
का किसी प्रोषितपतिका को
इस समय
हमारी कला और संस्कृति
खजुराहो और अजंता में बंद हैं
हमारे सिर पर चीन
और जुबान पर अमेरिका है
और अब दो दो पाँच करना
लीगल हो गया है
अब दलाईलामा भी
निर्वासित हो चुके हैं और
सत्य साई बाबा भी
प्रस्थान कर चुके हैं
इस समय
राखी इंसाफ कर रही हैं
और मल्लिका ज्यूरी की प्रधान हैं
इन दिनों
सुनामी की खबरों के बीच भी हम
कमर्शियल होना नहीं भूल रहे हैं
इस समय जीवात्मा और परमात्मा
दोनों अद्वैत हैं
हर गली में भगवान है और
सब के वस्त्रों का रंग गेरूआ है
इस समय विचारक
चौक चौराहे पर स्तंभित हैं
बाकी सब बोल रहे हैं
और सब के कान बंद हैं
इस समय स्कोर के लिए
बच्चे हैरतअंगेज कारनामें कर रहे हैं
और हम आलोचना करते – करते
वकालत करने लग रहे हैं
इस समय
पैदल चलने के लिए पैरों की नहीं
हिम्मत की जरूरत है
और स्कूलों में हिन्दी बोलना
बच्चों के लिए चुनौती है
यह समय
नया धर्म नया ईश्वर
नया आइडल चुनने का है और
वह मात्र एक एस एम एस से
चुना जा सकता है।

कहानी

चेहरे

नसीम साकेती
कल्याणपुर, पश्चिम, लखनऊ
मो0 09415458582

रोज की तरह ही उसने कॉलवेल की पियानों टाइप स्विच पर उंगली रखकर धीरे से दबाया ही था कि अन्दर बरामदे की दीवार पर लगी घण्टी से शहनाई का स्वर हवा में तैरने लगा.... बन्द दरवाजे के अन्दर कमरे में एक हल–चल उभरी– 'सोनू, पापा आ गये' ... कॉलवेल की स्विच को दबाने का उसका अपना आवष्किार किया हुआ अछूता ढंग था। जिससे पत्नी अभ्यस्त हो चुकी थी, घण्टी के मुँह से निकली सुरीली शहनाई की आवाज हवा में लहराते ही वह समझ जाती थी कि उसके 'वह' आ गये... अन्दर से सिटकनी तथा साँकल खुलने की आवाज के साथ दरवाज़ा खुला, सामने चिर–परिचित मुस्कुराते चेहरे के साथ उसका इकलौता सुपुत्र सोनू खड़ा था, आज उसने सोनू के सिर पर, रोज की तरह, हाथ नहीं फेरा और अपनी पत्नी को किसी सिद्धहस्त कलाकार के सधे हाथों से तराशे गये कोयों के अन्दर से झांकती , बड़ी –बड़ी आँखों की ओर सोच में डूबी मुद्रा में देखकर मरी हुई आवाज में बोला– 'दरवाजा बन्द कर लो'

– लेकिन आपका ब्रीफ़केस अभी नहीं आया जिसे रोज सरन लाया करता था।

– वह ब्रीफ़केस अब नहीं आयेगा।

– क्यों...?

– बुढ़वल – सीतापुर की छोटी लाइन से बड़ी लाइन के आमान – परिवर्तन के लिए आपूर्ति की

गई पत्थर की गिट्टी के जाँच के सम्बन्ध में विजिलेंस वाले आये थे।

– विजलेंस वाले ....? उसकी पत्नी एकदम चौंक पड़ी, जैसे वह किसी डरावने सपने के बाद जाग उठी हो।

– हाँ विजलेंस वाले .... जिनका आगमन सुनकर बड़े– बड़ों के मन की झील के ठहरे हुए पानी में पत्थर फेंक कर थोड़ी देर के लिए हलचल मचाने जैसी स्थिति हो जाती है, रेल– मंत्रालय ने एक आदेश पारित किया है कि विजलेंस के लोग बीस दिन कार्यालय से बाहर रहकर चेकिंग किया करें इससे कार्यो की गुणवत्ता में सुधार आयेगा, भ्रष्ट कर्मचारियों तथा अधिकारियों पर अंकुश लगेगा, उसी आदेश के अनुपालन में आज केन्द्रीय – विजलेंस की पूरी टीम बीसवां से परसेंडी के मध्य रेलवे लाइन के किनारे आपूर्ति की गई पत्थर की गिट्टी की चेकिंग करने तीसरी बार आये हैं..... हालांकि पूर्व आपूर्ति की गई गिट्टी की चेकिंग मापी– पुस्तिका के अनुसार पूर्ववत् कर चुके थे। जिसमें उन्हें शतांश भी अन्तर नहीं मिला क्योंकि अधिषासी अभियन्ता (निर्माण) गोयल साहब ने उन चट्टों की मापी स्वयं किया था जो वास्तविक मापी के लिए पूरे विभाग में अपनी अलग पहचान रखते हैं..... कार्य के प्रति ईमानदारी तथा शक्ति के कारण शुरूआत में कुछ माफ़िया – ठेकेदारों ने उन्हें जेब के अन्दर से आग्नेय –अस्त्र थोड़ा सा बाहर निकालकर उसकी झलक दिखाई थी। उनका अभिप्राय समझकर गोयल साहब ने भी सहायक इन्जीनियर साहब सिंह की भाँति बड़े साहस तथा मर्दानगी के साथ कहा था– गोली मार दोगे न....? मार देना ... एक दिन तो मरना ही है .... , साहस तथा ईमानदारी के शब्द के आगे आग्नेय–अस्त्र नत–मस्तक होकर मौन हो गया और ठेकेदार को अपने पैर से ज़मीन खिसकती नज़र आने लगी क्योंकि उन्हें पता था कि उन्हें काम गोयल साहब के साथ करना है, इस महीने के शुरू आपूर्ति की गई पत्थर की गिट्टी के चट्टों की विजलेंस द्वारा चेकिंग करनी थी जिसमें मुझे भी सहयोग करना था क्योंकि मैं भी उसी आपूर्ति की गई गिट्टी की मापी का एक अंग था.... जुड़ा था ...

– मिस्टर पाल , चट्टों के अन्दर बोल्डर (बड़े–बड़े पत्थर) तो नहीं है ? डिप्टी चीफ विजिलेंस अधिकारी शर्मा जी के शब्द थे।

–बोल्डर ... ?

– जी हाँ बोल्डर...? आप चौंकिए नहीं, अभी पाँचेक वर्ष पहले की बात है कि एक धूर्त्त जो नौकरी की दहलीज़ पर कदम रखते ही करोड़पति बनना चाहता था उसने बोल्डरों का चट्टा लगाकर उसे पत्थर की गिट्टी से ढक दिया और गिट्टी की आपूर्ति लेकर करोड़पति बनने की भावना को परवान चढ़ा रहा था... उसने इतना ही नहीं किया बल्कि सिंचाई विभाग के बड़े– बड़े ह्यूम – पाईप जो बगल में पड़े थे, के ऊपर गिट्टी का चट्टा लगवाकर मापी कर दिया करता था, लेकिन पाप सिर चढ़कर बोलता है, पाप का घड़ा जब भर जाता है तब वह फूटता ज़रूर है, मैंने ही उसके पाप के घड़े को फोड़ा था, आज वह दर–दर की ठोकरें खा रहा है , भिखारी बना गोरखपुर में मालकिन होटल के सामने जूठे पत्तल चाटता हुआ आपको नज़र आ जायेगा, जो कुछ उसने कमाया था उसमें से उसके भाईयों ने उसे एक छदाम भी नहीं दिया, पाप की कमाई का ऐसा ही हश्र होता है।

– गोयल साहब ने उसांस भरी और बेसाख़्ता बोले, 'ओ माई गॉड...' लेकिन सर, आप को हमारे चट्टों में कुछ नहीं मिलेगा।

– ठीक है, हाथ– कंगन को आरसी क्या ...? मैंने आपके बारे में सुन रखा है।

मापी के चेकिंग की प्रक्रिया प्रारंभ की गई, ऊँचाई की मापी काफी टाइट थी और ऊँचाई की मापी में हेर–फेर करने से ही मात्राओं पर काफ़ी प्रभाव पड़ता है, गोयल साहब यहाँ पहले से ही सर्तक मिले, शर्मा जी ने गोयल साहब की ओर देखकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त किया लेकिन लम्बाई, चौड़ाई ढाल मानक नहीं थी, उनका अनुपात एक और एक का नहीं था, ढाल उसी तरह फैला दी गयी थी जैसे किसी हसीना के लहंगे के निचले भाग में आजकल लम्बी झालर लगा दी जाती है, चट्टे में भी झालर बना दी गयी थी जबकि श्री श्रीवास्तव सतर्कता निरीक्षक डोरी लगाकर , लेवलिंग स्टाफ की मदद से एक– एक अनुपात के ढाल के अनुसार मापी करने लगे तो गोयल साहब सन्न रह गये और डिप्टी चीफ़ विजलेंस आफिसर शर्मा जी से बोले– 'सर, मैंने तो ढाल तक मापी कर दिया है।

वही तो नहीं होना चाहिए, खैर ज्यादा अन्तर नहीं पड़ेगा, ज्यादा अन्तर पड़ता है ऊँचाई की मापी से, जहाँ आप काफी सर्तक एवं टाइट है... आप जानते हैं कि ठेकेदार क्या करते हैं, कूबड़नुमा ऊँची ज़मीन पर चट्टा लगायेंगे और ढाल नीचे जहाँ तक ले जा सकते हैं सुरसा की जीभ तथा आज की आसमान की छूती महंगाई... प्याज 100 रूपये किलो... की तरह बढ़ाते चले जायेगें, चट्टा के ऊपर किनारे पर चारों ओर एक– एक गिट्टी रखकर चट्टा देवता को गिट्टी – रूपी फूलों की माला अर्पित करके बढ़ोत्तरी का वरदान मांग लेते हैं और चट्टा की ऊपरी सतह को गहरा करके गरीब फाक़ाकश भूखे पेट की गहराई बना देते है। चट्टा के चारो ओर गड्ढ़ा खोद देते हैं जिससे ऊँचाई बढ़ जाये।

चेकिंग समाप्त होगई मुझे बिसवां लौट जाने के लिए कहा गया, मैं उन लोगों को विदा करके पुश –ट्रॉली से बिसवां के लिए रवाना हो गया... मन में चट्टा लगाने में चाल बाज़ियो के बारे में सोचता रहा, तरह– तरह के हथकंडों के होते हुए आने वाले समय में नौकरी कैसे होगी..? दूसरे अब तो माफ़िया ठेकेदारो का चलन बढ़ता जा रहा है, बनारस में सीनियर डिवीजनल इंजिनियर श्री ओ0पी0 गुप्त जी जैसे ईमानदार इंजीनियर को गोली मारने की घटना नजरों से कौंध गई, आगे से आती हुई मालगाड़ी को देखकर पुश– ट्रॉली सामने वाली लेविल क्रासिंग पर रोकनी पड़ी, ट्रॉली–मैनों ने ट्रॉली को रेलवे लाइन से उतारकर... मेरे सिर का बोझ बढ़ता ही जा रहा था, आज के विषाक्त वातावरण तथा देश में फैले भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा को सोचकर, इसी ऊहापोह में ट्रॉली फिर रेलवे लाइन पर रख दी गयी और चल पड़ी मेरा ब्रीफ़केस उसी लेविल क्रासिंग पर छूट गया। पाँचेक किलोमीटर के बाद जब मुझे याद आया तब मैं विचारों के आकाश में त्रिशंकु की तरह लटक गया, चीरों तो खून नहीं, क्योंकि चेकिंग से सम्बन्धित सभी अतिमहत्वपूर्ण अभिलेख उसी में थे, पुश–ट्रॉली से फिर उसी लेविल क्रासिंग पर वापस लौटकर गये, लेकिन वहाँ पहुँचने पर निराशा ही हाथ लगी। अब रात का अन्धेरा सांवली शाम को अपनी गिरफ्त में ले चुका था, शीत – लहर अपने पूरे शबाब पर थी, मन का बोझ दोगुणा हो गया था, बिसवां पहुँचकर जब पुश–ट्राली से प्लेटफार्म की ढाल पर उतरा तो लगा किसी ने पैर में पत्थर बाँध दिया हो, कदम बड़ी मुश्किल से आगे बढ़ रहे थे, बिसवां में विवेक जी से मिला उन्होंने काफी ढाढ़स दिया और बोले

– सबेरे उसे ढूढ़ निकाला जायेगा, उसमें रूपया – पैसा तो नहीं था..?

– नहीं...

– फिर तो ज़रूर मिल जायेगा उस लेविल क्रासिंग के निकट अशरफपुर , करौंधीपुर तथा चाँदपुर के लोगों को मैं जानता हूँ अगर उन्हें मिला होगा तो वे उसे वापस कर देंगे और अगर किसी चोर–उचक्के के हाथ लगा होगा तो ब्रीफकेस खोलकर देखेगा और जब वह पायेगा कि उसमें सिर्फ कागज है तो वह स्वयं फेंक देगा, जैसे त्रिवेदी जी की पुरानी अटैची के साथ हुआ था उसमें भी सिर्फ़ काग़ज़ थे, विवेक जी की बातों से मुझे काफी आत्म–बल मिला और मैं सबसे पहले गोयल साहब के बंगले पर गया वह जीप से मुझसे पहले विसवां पहुँच चुके थे, उनसे मिलकर जब मैं इस घटना का जिक्र किया तब वह बोले –आप सबेरे जाकर सबसे पहले एफ0आई0आर0 कर दीजिए, गोयल साहब से बातें करके मैं घर लौट आया।

अगर ब्रीफ़केस नहीं मिला तो....? उसकी पत्नी की मशीनी धीमी आवाज उभरी उसने पत्नी की ओर देखा और विवशता की मूर्ति बनकर उत्तर देने के लिए शब्द तलाश करने लगा लेकिन उस वक्त उसे कोई शब्द नहीं मिला , वह उठकर वॉश– बेसिन के पास जाकर पिलर टेप खोलकर हाथ –मुँह धोकर सीधे जाकर मसहरी पर लेट गया, सामने दीवार पर लगा सौ पावर का बल्ब पूरे कमरे में उजाला बिखेरे हुआ था, उसने बिना कुछ बोले सांकेतिक भाषा में पत्नी से बल्ब बुझा देने का संकेत किया, पत्नी बल्ब बुझा दी, कमरे में अंधेरे की गहरी चादर सी तन गयी, उसने पलकों को दो बार झपकाया और आँखों के कोयों को कमल की पंखुड़ियों की भांति बन्द कर लिया.. एक गहरी उस्सांस ... लोग क्या सोचेंगे..? जाने कैसी–कैसी बातें मेरे साथ जोड़ने लगेगें ....बड़ा चालू है, उन काग़ज़ातों में ज़रूर बहुत बड़ा घपला रहा होगा, चेहरा मासूम जरूर लगता है लेकिन अन्दर से बड़ा शातिर है, विजिलेंस वालो ने तो कहा था कि कल नयी रेलवे लाइन बिछाने वाले भाग पर पड़ी प्राइवेट लैण्ड से लाई गयी मिट्टी की भराई के कार्यों की चेंकिंग करूँगा, इसलिए इसने सारे अभिलेखों को गायब कर दिया होगा..... मिट्टी की भराई का क्रास सेक्शनल ग्राफ, फील्डबुक, कम्पैक्सन– रजिस्टर, पुलों की ढलाई का क्यूब – रजिस्टर, ब्लैकटिंग के लिए हजारों ट्रक मूरम आपूर्ति से सम्बन्धित अभिलेखों में हेरा –फेरी करके जाल– साज़ों के भी कान काटे होंगे... वैसे देखने में तो अल्लाहमियां की गाय लगता है, गोयल साहब के सामने खड़ा होकर जब बातें करता है तब दयनीय तथा निरीह प्राणी से भी निम्न–तर हो जाता है। आज के दौर में किसी व्यक्ति को पहचानना बड़ी मुश्किल तथा टेढ़ी खीर है, बच्चू को अब पता चलेगा, ऊँट पहाड़ के नीचे आया है, नानी याद आ जायेगी सोचकर

इंजिनियर वर्मा फूले नही समा रहे थे, क्योंकि उनके काम को छीनकर गोयल साहब ने कहा था– वर्मा, आपसे ये सारे काम लेकर पाल को इसलिए दे रहा हूँ कि आप ठेकेदारों के कामों को इंजिनियर की नज़र से नहीं बल्कि ठेकेदार के एजेन्ट की नज़रों से देखते हो, जिससे गुणवत्ता प्रभावित हो रही है जो मुझे बर्दास्त नहीं, आप जानते है।

.....ब्रीफ़केस में रखे अभिलेख न मिलने पर यदि मैं सस्पेंड कर दिया गया और सस्पेंड होकर जब घर जाऊँगा तब माता–पिता का सामना कैसे कर पाऊँगा..? जिन्होंने नौकरी की दहलीज पर कदम रखने के लिए आते हुए कहा था– '' बेटे! जितनी चादर है उतना ही पैर फैलाना, नौकरी बड़ी मुश्किल से मिलती है। वह भी आज के जमाने में जहाँ लोग एक चपरासी की नौकरी के लिए लाखों की मांग करते हैं और लोग हैं कि दे भी देते है,'' मेरा छोटा भाई क्या सोचेगा मेरे बारे में जिसकी निगाह में उसका आदर्श हूँ।

– सो गये क्या जी ..... ? पत्नी की मख़मली आवाज़ से उसकी तन्द्रा टूट गयी।

– नहीं..

– अब क्या होगा...?पत्नी के स्वर में भी भविष्य के लिए वही सोच थी जो सोच उसके मस्तिष्क में उमड़– घुमड़ रही थी।

– क्या होगा ..? कुछ नहीं...मैंने कुछ गलत काम तो किया नहीं है।

–अभिलेख जो गायब हो गये है...?

– कल फिर जाऊँगा विवेक जी के साथ, वह मिल जायेगा उसने पत्नी को सान्त्वना दिया, अच्छा अब तुम सो जाओ , मेरे साथ तुम भी टेन्शन पाल रही हो।

– आप कुछ खा तो लीजिए।

– मुझे भूख नहीं लगी है, शत– प्रतिशत झूठ का दामन थामें उसने करवट बदल लिया जबकि उसका चेहरा चुगुली कर रहा था कि वह भूखा है क्योंकि चेहरा कभी झूठ नहीं बोलता।

सबेरा हुआ... नित्य–क्रम के बाद उसने ब्रश करके हाथ –मुँह धोया और रोज़ की भांति तौलिया लेकर सीधे बाथरूम की ओर नहीं गया बल्कि आज पहली बार बिना स्नान, पूजा–पाठ , कपालभांति, तथा ' अनुलोम–विलोम' किये सफ़ारी सूट पहना और स्कूटर बाहर निकालने लगा तो पत्नी की सुरीली आवाज़ आई –आज सारे नियमों को ताक़ पर रखकर बिना नाश्ता किये किस जल्दी में हैं...?

–थाने पर एफ0आई0आर0 करने जाना है और स्कूटर स्टार्ट कर दिया, थाने की राह नापने लगा, थाना कुछ ही दूर पर था। थाने पर पहुँचकर उसने देखा कि दारोगा जी थाने के सामने लॉन में आराम–कुर्सी पर अधलेटे से जाड़े की गुलाबी धूप का आनन्द ले रहे हैं, उसे दूर से ही दारोगा जी को पहचानने में लेश मात्र भी देर नहीं लगी...अरे ये तो वही दारोगा जी है, जिनके बारे में 'इण्डिया टी0वी0' तथा 'आज तक' पर हफ्तों से विशेष रिपोर्ट, प्रसारित की जा रही है, छोटे –बड़े सभी जीवन्त समाचार–पत्रों में इनके कारनामें छाये हुए हैं... टी0वी0 पर देखकर तथा अखबारों में पढ़कर लोगों ने दाँतों तले उँगली दबाई है लेकिन इतना सब कुछ प्रसारित तथा प्रकाशित होने के बाद भी दारोगा जी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी, उनकी सेहत पर कोई असर नहीं दिख रहा था क्योंकि दारोगा जी की राजनैतिक पकड़ इतनी मज़बूत थी कि टी0वी0 रिपोर्ट, समाचार –पत्रों में प्रकाशित समाचार निषप्रभावी हो जाते थे, जाँच दल द्वारा सभी चिन्हित सम्पत्तियां दारोगा जी से सम्बन्धित जरूरत थी लेकिन उनमें से कोई उनके नाम नहीं थी, उनके शातिर दिमाग में उन सम्पत्तियों को अपने बेटे– बेटियों, भाई– भतीजों तथा खानदान के अन्य लोगों के नाम न करके अपने ससुर, सास, सालों तथा उनके सम्बन्धियों के नाम कर रक्खी थी, सारी सम्पत्ति को इतना योजना –बद्ध ढंग से वितरित कर रक्खा था कि उनकी हैसियत पर कोई उँगली न उठा सके, जाँच की जद में आये भी तो साबित न हो सके कि दरोगा जी पर इल्जाम था कि उन्होंने नेपाल की सीमा के निकट गौरी फन्टा में पोस्टिंग कराकर तस्करों के माध्यम से अकूत धनार्जन किया था, शेर चीते की खालों, हाथी– दाँतों तथा बहुमूल्य अष्टधातुओं की मूर्तियों को विदेशियों के हाथों में सौंपने में इनका विशेष हाथ होता था। परिणामस्वरूप देखते ही देखते दारोगा जी तृतीय श्रेणी के एक सरकारी कर्मचारी के बजाय अर्थ – पुरूषों की श्रेणी में आ गये। उनसे तथा सम्बन्धियों से जुड़ी सम्पत्तियों की सूची जब जाँच समितियां बनाती थी तब वह द्रौपदी की चीर तथा शैतान की आंत की तरह बढ़ती चली जाती थी। दो पेट्रोल पम्प, पांच बसे, चार जीपें, चार लक्जरी डबल ए0सी0 गाडियां, लखनऊ में एक सिनेमाघर, एक आधुनिक साज– सज्जा से सुशोभित ए0सी0 विवाह –पैलेस आदि–आदि, लेकिन सबकी आँखों में धूल झोंकने के लिए एक विकसित कालोनी में आवास विकास द्वारा उनके नाम से आवंटित तीन कमरों का एक मकान था, जिसमें उनका परिवार रहता था, बच्चों की पढ़ाई के कारण पत्नी, बच्चों के साथ लखनऊ में ही रहती थीं। उनकी मुँह मांगी पोस्टिंग के स्थान पर बच्चों की छुट्टियों में ही जाया करती थीं। बच्चों को ट्यूशन तथा कोचिंग की सुविधाएं प्राप्त थीं लेकिन वे थे कि एक ही क्लास में दो–तीन वर्षो का आनन्द लेने का प्रण किये हुए थे। एक लड़का तथा एक लड़की के प्रण पूरा करने के बाद जब प्रमाण पत्र उनके हाथों में आया तब दरोगा जी ने डोनेशन का सम्बल लेकर उन्हें डाक्टर बनने के लिए बंगलोर भेज दिया लेकिन जब ये खोटे सिक्के वहाँ नहीं चल पाये तब पुनः लौटकर घर आ गये, तनाव में रहने लगे, नशे के आदि बन गये, अपना जीवन नरक के हवाले कर दिया... 'बाप का किया बच्चों पर आता है' इसका ज्वलन्त उदाहरण दारोगा जी थे, बच्चों के अन्धकारमय भविष्य का प्रभाव दारोगा जी पर निश्चित रूप से पड़ा था । लेकिन उस पत्थर– दिल इंसान के पत्थर को पिघलते हुए अभी तक किसी ने नहीं देखा... उनकी धर्म पत्नी पर जरूर इसका गहरा असर पड़ा था, बेटा तथा बेटी की दशा देखकर माँ का रोम– रोम जार व क़तार रोया करता था । उसकी सहन–शक्ति क्षीण होती जा रही थी और जब मनुष्य की सारी शक्तियां व्यर्थ तथा क्षीण हो जाती है तब मनुष्य ईश्वर की शरण में जाता है दरोगा जी की पत्नी भी अब दिन

–रात ईश्वर की शरण में रहने लगी थीं, पतिदेव को भी सीधे रास्ते पर चलते हुए ईश्वर की शरण में आने के लिए प्रेरित किया करती थीं लेकिन दरोगा जी पर इसका कोई असर नहीं दिख पड़ता था, क्योंकि वह कुत्ते की दुम थे..

दारोगा जी को धूप सेंकते –सेंकते काफी समय बीत चुका था। उन्होंने अपनी अधलेटी स्थिति को उबारा और उठ कर बैठ गये, निगाहें सामने की ओर गड़ी थीं। सामने मि० एस०के० पाल खड़े थे।

– कौन है...? कैसे खड़े हैं..?

– मैं रेलवे विभाग में सेक्शन इंजिनियर (वर्क्स) हूँ । मुझे एफ०आई०आर० करानी है। मेरा ब्रीफकेश जिसमें महत्वपूर्ण सरकारी लेख अभिलेख थे ....

– अच्छा तो आप इंजीनियर है...? तब तो आपके पास अकूत सम्पत्ति होगी...। क्या आपने रायबरेली के सड़क के घोटालों के बारे में समाचार पत्रों में पढ़ा तथा टी०वी० पर विशेष रिपोर्ट देखी नहीं, एस०के० पाल की पूरी बात सुने बिना दारोगा जी बोलने लगे।

– पढ़ा तथा देखा तो है लेकिन मैं तो रेलवे में हूँ और उस रास्ते पर ... और पुनः पाल के वाक्य के पूरा होने से पहले ही दारोगा जी बोल पड़े – तब तो वह भी टी०वी० पर देखा होगा जिसमें एक व्यक्ति रोजाना एक किलो बालू खाता है, लेकिन रायबरेली के इन्जीनियरों तथा ठेकेदारों ने तो मिल कर पूरी सड़क ही निगल गया जिसमें बालू के साथ गिट्टी– मिट्टी तथा कोलतार भी होता है। ऐसा निगला कि डकार तक नहीं आयी लेकिन जब शिकायत पर उसकी जाँच हुई तो इंजीनियरों तथा ठेकेदारों की उल्टी होने लगी, दिन में तारे नजर आने लगे.... क्योंकि रायबरेली की प्रश्नगत् सड़क केन्द्र के अनुदान से बनी थी प्रदेश के धन से नहीं, केन्द्रीय सरकार की पार्टी की एक शक्तिशाली महिला ने उस अनियमितता को स्वयं स्थल पर जाकर पकड़ा था और इच्छा व्यक्त किया था कि इसकी जाँच करायी जाय ... मुख्यमंत्री महोदय ने फौरन जाँच के आदेश पारित कर दिये और उस कार्य से सम्बन्धित इंजीनियरों तथा ठेकेदारों की सीखंचों के पीछे जाने के लिए मज़बूर कर दिया... त्वरित कार्यवाही पर शक की सुई घूमना शुरू हो गयी, प्रदेश के विपक्षी दलों में एक दल का आरोप था कि प्रदेश की सरकार ने प्रश्नगत् सड़क के घोटाले की, इसलिए त्वरित जाँच करानें का आनन– फानन में आदेश पारित कर दिया है कि अगर केन्द्र द्वारा इसकी जॉच करायी गयी तो प्रदेश के एक प्रभावशाली मंत्री पर भी गाज गिरने की पूरी सम्भावना थी।

– दारोगा जी, मेरा एफ०आई०आर ....

– आपको अपनी एफ० आई०आर० की पड़ी है और मेरे दिमाग में भ्रष्ट देशद्रोही उन इंजीनियरों तथा ठेकेदारों के कारनामों की तश्वीरें कौंध रही है, जानते हो उन लोगों ने कितना जघन्य अपराध किया है?मिट्टी की पटाई किया नहीं और उस मद में करोड़ों की फर्जी भुगतान कर दिया गया, सड़क में पत्थर की गिट्टी छह इंच मोटी पड़नी थी और डाली गयी मात्र तीन ईंच वह भी शंकरगढ़ की अमानक मिट्टी.. . और भुगतान छह इंच का किया गया .... कोलतारिंग 40 मिलीमीटर करनी थी और की गयी मात्र 20 मिलीमीटर, भुगतान40 मीटर का किया गया, इस प्रकार करोड़ों का घोटाला प्रकाश में आया, ये सब मैं अपने मन से नहीं कह रहा हूँ बल्कि ये ब्योरा अखबारों में प्रकाशित हुआ था... आप इंजीनियरों को चुल्लू भर पानी में डूब जाना चाहिए। पाल सोच रहे थे यह उस व्यक्ति की सोच है जो तस्करी में शामिल होकर इससे भी जघन्य अपराध का अपराधी है शायद मानव प्रकृति है कि लोग अपने गिरेबान में झांककर अपनी ज़मीर को नहीं टटोलते हैं बल्कि दूसरे व्यक्ति पर उँगली उठाते हैं, आज हर व्यक्ति को भ्रष्ट समझता है और कहता है हर विभाग में भ्रष्टाचार व्याप्त है, बिना घूस के कहीं काम ही नहीं चलता है इस सच्चाई को कहते हुए शायद वह भूल जाता है कि वह भी तो उसी थैली का चट्टा– बट्टा है।

– दारोगा जी मेरा एफ०आई०आर०

– लगता है कि आपने भी कोई बहुत बड़ा घोटाला किया है और ब्रीफ़केस में रक्खें अभिलेखों को ब्रीफकेस सहित इसलिए गायब कर दिया है जिससे आप उस घोटाले के चक्रव्यूह के ज़द में न आ जायें , दरोगाई दिमाग़ चला।

–दारोगा जी यक़ीन मानिए, मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है।

–मैं कैसे मान लूँ कि आपने कुछ नहीं किया है, इंजीनियर साहब आपने बहुत किया है मेरा दिमाग़ कह रहा है, एफ०आई०आर० तो पहले मुझे आपके विरूद्ध लिखनी पड़ेगी।

–क्या?

– जी हाँ मैं आपके खिलाफ एफ०आई०आर० लिखने जा रहा हूँ खूब कमीशन काटा होगा आपने..? अकेले हजम करना चाहते हैं आप. ..? जाइये और उसमें से एक लाख रूपया लेकर आईये, वरना आपके खिलाफ एफ०आई०आर० लिखने के बाद आपका क्या हर्ष होगा आप स्वयं सोच सकते है। दारोगा जी की बातों से उसे लगा जैसे किसी ने उसे आसमान से ज़मीन पर फेंक दिया हो , उसकी सोच के बेलगाम घोड़े जाने कहाँ–कहाँ दौड़ने लगे, एक लाख रूपया...? मैंने तो अभी इतना रूपया देखा भी नहीं..?

उसके चेहरे की रंगत गिरगिट की रंगत में बदलने लगी। वह सोच के पहाड़ के नीचे दबा जा रहा था कि उसकी नजरों ने देखा, उसके ऑफिस के राजकरन बाबू हाथ में वही ब्रीफ़केस लटकाये हांफते–डांफते आते हुए दिखाई पड़े, पाल की आँखों में नयी चमक आ गयी।

– साहब ब्रीफ़केस अशरफपुर गांव की सड़क के किनारे पड़ा मिल गया, लगता है जिसे ये ब्रीफकेस मिला था उसने खोलकर देखा, जब उसमें उसे अपेक्षित कुछ नहीं मिला तब उसने सड़क के किनारे फेंक दिया होगा, ब्रीफ़केस का ताला टूटा हुआ है रामकरन बाबू बोले।

पाल ब्रीफकेस लेकर खोलकर जल्दी –जल्दी अभिलेख उलट पुलट कर देखने लगे, सभी अभिलेख ब्रीफ़केस में थे, पाल के चहरे पर छाई मुर्दानी काफूर हो गई उसने ब्रीफ़केस को बन्द किया और लम्बे– लम्बे डग भरता हुआ अपने स्कूटर के पास आ गया।

गजल

सीख लिया...

बच्चू चौधरी अकेला
आदमपुर , भागलपुर
मो0 8936090887

जब से उसने राज़ छिपाना सीख लिया
उसका भेदी भेद बताना सीख लिया
आहिस्ते की बात पड़ोसी की हमसे
दीवारों ने कान लगाना सीख लिया
खिड़की से वह झाँक लिया खास सनम
घर आने का रोज़ बहाना सीख लिया

जाने क्यूँ वह खोल रखा है दरबाजा
बाहर वाला आना–जाना सीख लिया

इज्ज़त– अस्मत नग्न हुई हैं मर्जी से
हम भी सीखें और ज़माना सीख लिया
जिस्मों की हर वक्त नुमाइश आम हुई
सड़कों पे भी खूब दिखाना सीख लिया

कोई भी नाराज़ नहीं नंगेपन के
मुद्दे को दस्तूर बनाना सीख लिया ।
मयखाने में जाम छलकता जहरीला
फिर भी पीना यार पिलाना सीख लिया

जिसके आँसू पोछ रहे थें आँखों से
वो हमको हरवार रूलाना सीख लिया
इक कंकड़ से मौत कबूतर की लाज़िम
उस पे क्यूँ बन्दूक चलाना सीख लिया

कैसे लगती आग 'अकेला' ने घर को
अश्कों से दिन–रात भिंगना सीख लिया

कविता

डॉ० अलका रानी अग्रवाल
एसोससिएट प्रोफेसर एवं प्रभारी
स्नातकोत्तर अंग्रेजी विभाग

कहीं फिर

दरो-दीवार को यूँ हाथ न लगाओ.
अक्स उभर आयेगा मेरी तस्वीर का ।
सूने आईने में यूँ न झांकों.
नज़र आयेगा चेहरा मेरे यार का ।
रीते चरागों में बाती न जलाओ.
रोशन हो जायेगा नज़ारा मेरी बर्बादी का.
खाली पड़े तख्तों-ताज पर नज़रें न टिकाओ.
मौजूं हो जायेगा समां फिर बहार का।।
उजड़े हुए दयार पर यूँ मजमां न लगाओ.
मौजूं हो जायेगा समां फिर बहार का।।
उजड़े हुए दयार पर यूँ मजमां न लगाओ.
गुलजार हो जायेगा फिर मंजर चमन का.
मुरझाए दरख्तों की यूँ खिल्ली न उड़ाओ.
आस से भर जायेगा फिर दामन हसरतों का।
टूटे काँच से आती रोशनी को न कोसो.
बरसात फिर से ला देगी मौसम इन्द्रधनुष का.
मौन पड़े सितार को यूँ न छेड़ो.
गूँज न उठे कहीं फिर स्वर नग्मों का.
बेरंग हुए इन चित्रों में यूँ रंग न भरो.
छनक न पड़े कहीं घुंघरू फिर पायल का।।

गज़ल

मुल्क की खातिर

अभिनव अरूण
वरिष्ठ उद्घोशक
आकाशवाणी , वाराणसी

झूठ जब भी सर उठाये वार होना चाहिए
सच को सिंहासन पर ही हर वार होना चाहिए

बात की गांठें जरा ढीली ही रहने दो मियाँ,
हो किला मजबूत लेकिन द्वारा होना चाहिए

फिक्र ऐसी हो कि हम फाके में भी सुलतान हों
क्या जरूरी है कि बंगला– कार होना चाहिए

मैं कि दुनिया से मिलूँ कैफी और साहिर की तरह
पास तुम आओ तो मन गुलज़ार होना चाहिए

घर से शाला तक मेरा बचपन कहीं गुम हो गया
जी करे हर रोज ही इतवार होना चाहिए

साफगोई है तो दिल चेहरे से झांकेगा जरूर
आदमी लिपटा हुआ अखबार होना चहिए

मुल्क की खातिर फकत झंडे न फहराएँ हुजूर
गर मुहब्बत है तो फिर इजहार होना चाहिए।

2

'कहूँ कैसे कि ...

कहूँ कैसे कि मेरे शहर में अख़बार बिकता है
डकैती लूट हत्या और भ्रष्टाचार बिकता है

तेरे आदर्श तेरे मूल्य सारे बिक गये बापू
तेरा लोटा, तेरा चश्मा तेरा घर बार बिकता है

वही मुंबई जहां दुनिया की सारी रौनकें बिकती
वहीं पर जिस्म कईयों का सरे बाज़ार बिकता है

चुने जाते ही जब वो सारे वादे भूल जाते हैं
ये वोटर किस छलावे में भला हर बार बिकता है

ये कलयुग है ठगी की इन्तेहाँ होती नहीं कोई
सुना है नेट पर दिल्ली का कुतुबमीनार बिकता है

करप्शन इस कदर हावी शहर के अस्पतालों में
दवा के वास्ते हर रोज ही बीमार बिकता है।

गज़ल

दरकते देखना

अनिल मिश्र
न्यू हैदराबाद लखनऊ

इंकलाबी हाथ को गर्दन पकड़ते देखना
देखना पूरी व्यवस्था को सहमते देखना
नाक के ऊपर ज़रा पानी पहुँचने दीजिये
आब की तासीर तेज़ाबी बदलते देखना
भीड़ को जो भेड़ सा हाँका किये हैं उम्र भर
ऊनसे उनका अपना साया भी सरकते देखना
हैं हिफ़ाजत से रखे जिसको दरों दीवार ये
दफ्न करने को उसे इनको दरकते देखना
है नहीं आसान यह आँखें फटी रह जायेंगीं
वक्त को बेवक्त पर करवट बदलते देखना ।

2

महकती संदली यादें हवा के साथ आती हैं
कभी वे मुस्कराती हैं कभी वे गुनगुनाती हैं
वहीं मिट्टी घरौंदों को बनाने औ गिराने में
हुई झड़पें लगी चोटें अभी भी गुदगुदाती हैं
समंदर में कभी अश्कों के जब हम डूबने लगते
वही कशती पुरानी काग़ज़ां की आ बचाती हैं।
छिले घुटने , सने कीचड़ पहुँचते थे घरों में जब
हमारे जख्म धो हल्दी लिये माँ याद आती हैं
वही बरगद गिरे थे हम अनेकों बार जिस पर से
उसी पर बैठ कुछ बुलबुल हमें अब भी बुलाती हैं।

3

पर बेखबर रहे

जज्वों –कशिश की बेखुदी में यूँ उधर रहे
यारो क़यामत हो गयी, पर बेख़बर रहे

किसको सुनाएँ ज़िन्दगी की वे कहानियाँ
मुस्कान हर एक पल रही औ' चश्म–तर रहे

या रब बनी यूँ ही रहे दीवानगी मिरी
है फ़र्क क्या तू बेख़बर या बाख़बर रहे

मंज़िल उसे मिल जायगी है हौसला अगर
चलना जिसे है आ गया कोई डगर रहे

ख्वाहिश दिली है इश्क में मेरी यही सुनो
मैं मैं रहूँ या न रहूँ वह वह मगर रहे ।

ग़ज़ल

सवाल चाहिए

दिनेश तपन
भागलपुर
मो0 : 9431090390

हिम्मत और जोश में जरा उबाल चाहिए
तारीकियों में इक अदद मशाल चाहिए

कॉलर पकड़ के अब सिखाइये उन्हें सबक
हर काम के एवज में जिन्हें माल चाहिए

क्यों आज लोकतंत्र में इतनी है भ्रष्टता
हर एक की जुबां पे यह सवाल चाहिए

बैठे हैं कुर्सियों पे सभी लूटने वाले
इसके लिए इक जोर का भूचाल चाहिए

पानी निकल गया है सर से चुप न बैठिये
अब वक्त है कि हर कहीं बबाल चाहिए

केवल भरोसे का यक़ीं करना फिजूल है
वाजिब हैं माँगे तो हमें तत्काल चाहिए

किसने कहा सुराख अर्श में नहीं होता
पत्थर को जोर की 'तपन' उछाल चाहिए।

2

बहर में ...

ऐन मुमकिन है होगी बहर में ग़ज़ल
खूब कहने लगे वो शहर में ग़ज़ल
रात काली अँधेरी या हो चाँद की
लोग गाते हैं दिन दोपहर में ग़ज़ल
बादलों में, गगन में, चमन में यही
झील पानी के भी है लहर में ग़ज़ल
मौसमों का अलग एक अंदाज है
गुनगुनाती मिलेगी शहर में ग़ज़ल
उनके बालों में, गालों में, चालों में है
हर अदा मुस्कुराती नजर में ग़ज़ल
साथ उनका मिले तो 'तपन' उम्र भर
पुरकशिश जिन्दगी के सफर में ग़ज़ल

कविता

भारत की आशा 'युवा'

नवनीत
ओड़िशा

हर मुश्किल में तुम धीर बनो
इतिहास रचो तुम आगे बढ़
हर वक्त तुम्हारे कब्जे में
एलान करो सिंघासन चढ़
हर कलम तुम्हारी बीती को
एक काव्य बनाने की सोच
तकदीर बनाने से पहले
क्यों खुदा ना तेरी रज़ा पूछे
तेरी रस्सी में दुनिया के
कर, पैर बंधे हों साथ–साथ
नतमस्तक क्यों न हो दुनिया
कर दोनों जोड़े एक साथ
तेरी आँखों में स्वर्ग रहे
पर पाँव टिके हो धरती पर।
क्योंकि मानवता के अगणित
उपकार पड़े हैं तुझ पर
तुमसे आशा है भारत को
कर रही घोषणा भारत माँ
बन कर सपूत तुम उस माँ का
गुलज़ार करो हर कारवां

कविता

अदभुत प्रीति

रजनी मोरवाल
मोटेरा, अहमदाबाद
मो0 9824160612

यह प्रीत बड़ी ही अद्भुत है
दुनिया से यह बेगानी है
मन मस्त पवन – सा झूम रहा
तन सूफी होकर नाच रहा
संयम का एकाकी दर्पण
लो अर्थ स्वयं के जाँच रहा
प्राणों के भीतर मधुशाला
इस मंथन से अनजानी है
लैला मजनूँ, शीरी फरहाद
जो अमर प्रेम के हिस्से हैं
मरकर अब भी वो ज़िन्दा है
प्रेमी राँझा के किस्से हैं
यादों में लिपटा ताजमहल
चाहत की अमिट निशानी है
इसके खातिर मीरा बाई
महलों से जंगल तक आई
मोहन का दर्शन जब पाया
जग छोड़ श्याम संग परनाई
घुँघरू पैरों में बांध लिए
मीरा हुई श्याम दीवानी है।

2

कंचो वाला बचपन

शहरीवन मे बिछुड़ गया है कंचों वाला बचपन
आँगन सिकुड़ा घर के अंदर
आ पहुँची कॉलोनी
बिन ब्याहे ही लौट रही
सारी ऋतुएँ सागौनी
मैदानों ने पहनी मीनारों की भरी अचकन
चैनल के तारों की गड्डी
अटकी है हॉर्डिंग में
वाहन आवाजाही करते
हर मौके पार्किंग में
खेल खिलौने लील गया अब ये कोंक्रीटी गुलशन
माँ की लोरी गुमसुम अंग्रेजी
गाना भरमाए
पिज़्ज़ा की रोटी पेप्सी की
बोतल अब ललचाए
हुआ विदेशी चुल्हा भी अब स्वाद बने हैं उलझन।

कविता

उड़ान

संजय वर्मा ''दृष्टि''
125, शहीद भगत सिंह मार्ग
मनावर जिला – धार (म प्र0)

पिता बेटी की आँखों में देखता
सपनें, कल्पनाएँ
अन्तरिक्ष में उड़ानों के
पंख संजोता सपनों में
मन ही मन बातें करता
बुदबुदाता
मेरी बेटी का ध्यान रखना
जानता हूँ अन्तरिक्ष में
मानव नहीं होते
इसलिए हेवानियत का
प्रश्न नहीं उठता
पिता हूँ
फिक्र है मुझे
बड़ी हो चुकी बेटी की
छट जाते हैं, जब भ्रम के बादल
तब दूर से सुनाई देती है
भीड़ भरी दुनिया में
उत्पीड़न की आवाजें
उन्हें रोकने की बीड़ा उठाती
बेटी की आक्रोशित आँखें
देती चीखों के उन्मूलन का
देखता हूँ विस्मित नजरों से
फिर से संजोये सपनों को
बेटी की आँखों में
उड़ान
उत्पीड़न से निपटने की
होंसलों, कल्पनाओं के साथ.....

कविता

और भी...

संजय सहाय
राँची युनिर्वसिटी

मुझे गिरने दो
मुझे गिरने दो
और, और, और भी
जहाँ भी गिरूँ
जितना भी गिरूँ
जैसे भी गिरूँ
मैं जानता हूँ कि
मैं तुम्हारी नजरों से दूर न रहूँगा
क्योंकि तुम देख सकते हो
पर्दे के इस पार भी , उस पार भी
कल जहाँ हम गिरे थे
वह आज का शिखर है
बदलते सामाजिक मूल्यों में
फिर से सम्भलने का उपक्रम है
लोग तो चाहेंगे ही
वर्तमान को जकड़े रखना
उन्हें गिरने का डर है
क्योंकि वे छलांग नहीं लगा सकते
उन्हें मरने का डर है
क्योंकि वे सच को प्यार नहीं करते
वे विवश हैं घुट–घुट कर जीने को
और कहते हैं दूसरों को उठो– उठो
इसलिए मैं कहता हूँ
मुझे गिरने दो
और , और , और भी।

कविता

''तेरे शहर से मेरा गाँव अच्छा है''

अनामिका सिंह,
व्याख्याता
शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
बरारी, भागलपुर –812003

बड़ा भोला बड़ा सादा बड़ा सच्चा है
तेरे शहर से तो मेरा गाँव अच्छा है
वहाँ मैं पिता के नाम से जानी जाती हूँ
और यहाँ मकान नंबर से पहचानी जाती हूँ
वहाँ फटे कपड़ों में भी तन को ढँका जाता है
यहाँ खुले बदन पे टैटू छापा जाता है
यहाँ कोठी हैं, बँगले हैं और कारें हैं
वहाँ परिवार है और हमारा संस्कार है
यहाँ चीखें दीवारों से टकराती हैं
वहाँ दूसरों की सिसकियाँ भी सुन ली जाती है।
यहाँ शोर– शराबे में कहीं खो जाती हूँ,
वहाँ टूटी खटिया पर भी चैन से सो लेती हूँ
मत समझो कम हमें कि हम गाँव से आए हैं
चने और मक्का साथ सौगात भी लायें हैं
दिखावटी सामान ही तुम बनाते हो,
पर पेट हमीं से भरते ही
यह मत भूलो तुम्हारा शहर
गाँव के उधार पर ही बसा है।

कविता

अनिरुद्ध प्रसाद विमल
बॉका, बिहार
मो0 9934864342

संकल्प

सुनो
अगर तुम्हारे परमार्थ ने
ले ली है जगह स्वार्थ की
और तुम्हारा हृदय
पत्थर का हो गया है
तो मुझे मत जीने दो
मेरे नाम/ सौ इल्जाम गढ़ लो
और मुझे ईशु की तरह
सूली पर चढ़ा दो
वैसे भी मेरा दम घुट रहा है
इस मुल्क में
जो तुम्हारी कसती हुई मुट्ठी में
सिमटा चला जा रहा है
और मैं झुलसने लगा हूँ
तुम्हारी कसती हुई
मुट्ठियों के ताप से
मैं जानता हूँ
कि तुम्हारे प्रशस्त पथ का काटा हूँ
तो फिर देर क्यों
तुम्हारे हाथ में तलवार है
(जिसे तुमने मुझसे बनवायी थी)
सुनो
क्या तुम्हारी गोलियाँ
शेष हो गई हैं
जो मुल्क में पिरामिड का
निर्माण करती हैं
मैं क्या करूँ , लाचार हूँ
तुम्हारा साथ नहीं दे पा रहा हूँ
न जाने कब मेरा यह मन
महाभारत का कृष्ण बन गया है
दुर्योधन के
उन तमाम साजिशों के खिलाफ
जिसकी नीतियों के पीछे
शकुनी का छल है
दुःशासन का बल है
मैं अपने जन्म से पांव के नीचे
जमीन नहीं पा रहा हूँ
उपर शुन्य है
और मैं बीच में
त्रिशंकु की तरह
लटका हुआ हूँ
मैंने स्वर्ग पहुँचना चाहा था
(किसी के तप के सहारे)
जो झूठ सिद्ध हुआ
सुनो
अब मेरा निर्णय बदल गया है
मैं यह जिद्द ठान ली है
कि अपने लिये नहीं
अपने सभी भाईयों के लिए
अब स्वर्ग लेकर ही
धरती पर उतर जाऊँगा

2

प्रतीक्षा में

अमावस की
उस रात का मेरा वह स्वप्न
स्वप्न था या कि कुछ और
चढ़ती हुई धूप थी
और हिमालय पिघल रहा था
समतल की छोटी –बड़ी
नदियों के साथ मिलकर
सारी धरती को डूबो रहा था
अपने को
बचाने की कोशिश में
मैं जब हाथ–पांव मार रहा था
तब तुम प्रभु मेरे पास आये थे
मुझे याद है
मैंने सोचा था–
तुम मुझे बचाओगे
लेकिन बचाने के बजाय
बाढ़ में तुमने डुबोना शुरु किया
मेरे अधर्मो को गिनाते हुए
मैं चीख रहा था–
मेरे प्रभु!
तुम्हारे चित्रगुप्त ने तुम्हें धोखा दिया है
लेकिन तुमने मेरी बातों को सुनने के बजाय
मुझे अपने सुदर्शन का
भय दिखाते रहे देवता होने के मद में
तुम भूल गये थे
कि तुम्हारे निर्माण में
मेरा भी कुछ हिस्सा है
और तब
मैं अचानक ही
बलभद्र में बदल गया था
तुम्हारे सुदर्शन को
गुस्से में निगल गया था
तुम्हारा सुदर्शन
अपनी तेज गति के बावजूद
निकल नहीं पाया था,
मेरी अँतड़ियों को फाड़कर
कैसा था वह स्वप्न!
अमावस का
उस रात का मेरा स्वप्न।
और आज की तारीख
–भूख की
–दहशत की
उत्पीड़न की तारीख
मैं बरामदे में बैठा
सोचता हूँ
क्या उस रात का स्वप्न
सच नहीं हो सकता?

लघुशोध

संस्कृत में अनूदित कुर्आन

'सांस्कृतम् कुराणम्' का समीक्षात्मक अध्ययन

राजेश सरकार
भुवनेश्वर, उड़ीसा

किसी भी धर्मग्रन्थ में निहित संदेश की परिसीमा मात्र उस धर्म–समुदाय विशेष तक नहीं होती है, अपितु उसका अनुपालन कर सम्पूर्ण मानवजाति इहामुत्रार्थफल का लाभ करके परमपद को प्राप्त करती है। सभी धर्मों–सम्प्रदायों में नियमों की पृथकता होते हुये भी यम की सार्वभौमिकता सुस्पष्ट है। यही यम–नियम ही धर्म के मूलाधर हैं। मानव जाति को सत्पथ पर चलाते हुये सामाजिक–शान्ति एवं सौहार्द बनाये रखने के गुरुतर दायित्व का निर्वहन इन धर्मग्रन्थों ने आदिकाल से किया है। भारतीय सनातन–संस्कृति विभिन्न दिषाओं से आने वाली विचारधाराओं का सदा से ही स्वागत करती रही है।

सनातन–संस्कृति एवं परम्परा के आधार एवं आगार वेदों में कहा गया है–

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः।[1]

जैसा कि सर्वविदित है, पवित्र कुरआन इस्लाम धर्म की सर्वमान्यताप्राप्त ईश्वरीय पुस्तक है एवं मूलरूप में आज भी अरबी भाषा में सुरक्षित है। इस्लाम धर्म की मान्यता के अनुसार इस ग्रन्थ का अवतरण लगभग तेईस वर्षों की दीर्घ कालावधि में जिब्रील (अलै.) नामक देवदूत के माध्यम से पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (स.) पर हुआ है। धर्मग्रन्थ की भाषा पद्यात्मक, लयप्रधान अरबी है। कुरआन का शाब्दिक अर्थ 'पाठ करना या वाचन करना' होता है। इस ग्रन्थ में 114 अध्याय हैं जिन्हें 'सूरः' कहते हैं। अन्तिम 35 अध्यायों को छोड़कर शेष अध्याय विभिन्न विभागों में विभाजित हैं जिन्हें 'रूकुअ' कहा जाता है। रूकुअ के अन्तर्गत जो परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं, अनुवाक्य हैं, जो आयत कही जाती है जिनकी संख्या 6240 है। इस ग्रन्थ में प्रधान विभाजन को 'पारा' कहा जाता है, जिनकी संख्या 30 है। पैग़म्बर मुहम्मद (स.) ने अपने पैग़म्बर होने की घोषणा के पश्चात् अपनी जन्मभूमि मक्का में तेरह वर्षों तक निवास किया, तत्पश्चात् वह मदीना प्रव्रजन करने पर विवश हुये, जहाँ उन्होंने जीवन के अन्तिम दस वर्ष व्यतीत किये। जो अध्याय (सूरः) आपके मदीना प्रस्थान से पूर्व अवतरित हुई वह मक्की एवं जो मदीना में अवतरित हुई वह 'मदनी' कही जाती है।

जैसे–जैसे इस्लाम अरब मरूभूमि की सीमा का अतिक्रमण कर विश्व के अन्यान्य भूभागों में फैलने लगा, वैसे–वैसे कुरआन के अन्य भाषाओं में अनुवाद की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इस क्रम में कुरआन का अनुवाद मुस्लिम क्षेत्रों में प्रचलित भाषाओं फ़ारसी, तुर्की, हिब्रू, उज्बेक, कज्जाख़, मंगोलियन, अल्बानियन उईगुर, मलय, बहासा, चेचेन इत्यादि भाषाओं में हुआ। यूरोप की विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद हुये। इस्लाम के भारत में आने के बाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में कुरआन के अनुवाद एवं टीकाओं की परम्परा का विकास हुआ। किन्तु भारत की सम्माननीय एवं धर्म परम्परा अवगाहिका भाषा संस्कृत में इसका अनुवाद सुखद आश्चर्य का विषय है। ज्ञात सूत्रों के अनुसार मध्यकाल में इस प्रकार का कोई प्रयास नहीं किया गया। प्रो0 सैयद हसन अब्बास (विभागाध्यक्ष, फ़ारसी विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) से चर्चा के क्रम में मुझे पता चला कि बुरहानपुर की जामा मस्जिद में कुरआन की कुछ आयते मूल अरबी के साथ संस्कृत अनुवाद में उत्कीर्ण है। कुरआन की कुछ आयतों का संस्कृत अनुवाद एवं कुरआन वर्णित अल्लाह के निन्यानवे नामों का विष्णुसहस्रनाम के साथ तुलनात्मक अध्ययन अचार्य विनोबा भावे द्वारा अपनी पुस्तक 'कुरआन सार' में किया गया है। किन्तु सम्पूर्ण कुरआन का यह संस्कृत अनुवाद सत्यदेव वर्मा द्वारा 'सांस्कृतं कुराणम्' के नाम से पद्यात्मक एवं प्रवाहमय छन्द में किया गया है। इस अनुवाद के उद्देश्य को अनुवादक ने प्रारम्भ में स्पष्ट किया है–

'स्वान्तस्सुखाप्तये कृत्वा कुराणं सांस्कृतं त्विदम्।
भूत्यै सर्वस्य लोकस्य प्रस्तौम्येनदहं मुदा।।
विश्वस्य विदुषां नत्वाऽसकष्देतद् वदाम्यहम्।
मदीया एव दोषास्तु गुणास्त्वत्र विपश्चितम्।।'

अनुवादक ने कुरआन के सूरः को सूक्त, पारा को पर्व,

आयत को आयातः कहा है। प्रत्येक सूरों के शुद्ध संस्कृतनिष्ठ नाम समान पर्याय का साम्य बैठाते हुये किया है–

अल् फातिहा (सूक्तम् उपोद्घात) सूरः बकरा (सूक्तम् गौ), सूरः आले इमरान (सूक्तम् इमरानकुलम्), सूरः अल्–निसा (सूक्तम् निशा), सूरः अल् माइदा (सूक्तम् आहारपीठिका), सूरः अल् अन आम (सूक्तम् पशवः), सूर ए अल् आराफ् (सूक्तम् आरोहः), सूरः अल् अनफ़ाल (युद्ध सत्याजितानि), अल् तौबा (प्रायश्चित्तम्), यूनुस (यवनाशः), यूसुफ़ (यूषपः), इबराहीम (अब्रह्मः), अल् अम्बिया (देवाः), अल् हज्ज तीर्थयात्रा, अल् फुरकान (विवेकः), अल् शु अ अरा (शुक्रः), राद (ह्रादः), अल् नम्ल (पिपीलिकाः), अल् फ़त्ह (विजयः), अल् सज्दा (प्रणिपात्), अल् फ़ातिर (कर्ता), अर्र रहमान (दयावान्) अल् नूह (नहुषः), अल क़लम् (लेखनी, अल् तलाक़ (त्यागः), मुनाफ़िकून (पाषण्डिनः), ज़िलजाल (ज्याचालः) अल् फील (पीलुः) सूरा अल् काफ़िरून (श्रद्धाविहीनाः), अल् सफ्फ़ात (पंक्तिगा), अल् लहब (अभ्रलुब्धः), अल् नस्र (साह्यसंभारः) अल् इख़लास् (एकोऽप्रतिमः), अल् फ़लक (उषाकालः), अल् नास (शरणम्)।

अनुवादक ने मूलभावना को ध्यान में रखते हुये कूट पदों एवं विशेष शब्दों को यथावत् रहने दिया है यथा– ता0हा0, या0 सीन0, अलिफ़ लाम मीम0, मुहम्मद, कुरैष, लुक़मान।

अनुवादक ने 'कुराण' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये प्रतिपादित किया है–

''कौ पशथिव्यां राणो घोष इति यत् पठनेन वाचनेन वा रण्यते घोष्यते तद् हि कुराणम्।''

जिसके पाठ करने या वाचन करने से सम्पूर्ण पृथिवी घोषायमान हो जाये उसे कुराण कहा जाता है।

अनुवादक ने कुरआन के सूरों, जो अपने मक्का एवं मदीना में अवतरण के कारण मक्की एवं मदनी के नाम से विभाजित हैं, को महाकाल (मक्का) एवं मदहीनः (मदीना) के नाम से अभिहित किया है। अनुवादक इस संस्कृत कुरआन का आधार मु0 फारूख ख़ान (मक्तबा अल् हसनात रामपुर उ0प्र0) के हिन्दी अनुवाद एवं मारड्यूक पिक्थल के अंग्रेजी अनुवाद पर है।

सूरः अल् फ़ातिहा के अनुवाद का मूल के साथ तुलनात्मक अध्ययन द्रष्टव्य है–

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम0 अल्हम्दुलिल्लाहि रब्बिल–आलमीन (1) अर्रहमा– निर्रहीम (2) मालिकि यौमिद्दीन (3) इय्याकनअबुदुव इय्या–कनस्तीन (4) इहिदनस् सिरातलमुस्तक़ीम (5) सिरातल्लज़ीन अनअम–त–अलैहिम् (6) ग़ैरिल् मग़ज़ूबि अलैहिम् वलज़्ज़ाल्लीन।

शुरु उस ख़ुदा के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहम वाला है।

सब तरह की तारीफ़ ख़ुदा ही के लिए जो तमाम मख़्लूक़ का परवरदिगार है। बड़ा मेहरबान निहायत रहमवाला, इन्साफ़ के दिन का हाकिम। (ऐ परवरदिगार!) हम तेरी ही इबादत करते हैं और तुझी से मदद मांगते हैं। हमको सीधे रास्ते पर चला। उन लोगों का रास्ता जिन पर तू अपना फ़ज़्ल व करम करता रहा है। न उनका जिन पर गुस्सा होता रहा और न गुमराहों का।

सूक्तम उपोद्घात (सूरत उल् फातिहा)

(महाकालेऽवतीर्णाः सप्तायातः)

साल्लाहनामजापं योऽल्लाहो दयी हितैश्यपि

प्रभुः सर्वस्य विश्वस्य योल्लाहो वर्त्तते (ध्रुवम्)।

शंसनं सर्वमप्यस्ति तदर्थं यः पुनर्दयी।।1।।

अत्यर्थव्च कृपाशीलः निर्णयाहस्य यः प्रभुः।

नमामः केवलं ते वै, त्वदेव केवलादयो

साह्यापेक्षा भवामश्च दर्शयास्मान् ऋजुं पथम्

तेषां येषु दया जाता त्वदीया, न परं पुनः

तेषां ये कोपपात्राणि त्वदीयान्यभवन् अथो

नापि तेषां पथभ्रष्टा अभूवन ये तु मानवाः।

इसी क्रम में 'सूर ए इख़लास' का अनुवाद अत्यन्त सुन्दर एवं प्रभावयुक्त है–

कुल् हुवल्लाहु अ–हद (1) अल्लाहुस्स–मद (2) लम् यलिद् वलम् यूलद् (3) वलम् यकुल्लहू कुफुवन् अ–हद (4) शुरु खुदा का नाम लेकर जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहम वाला है। कहो कि वह (ज़ात पाक जिस का नाम) अल्लाह (है) एक है। वह माबूदे बरहक, बे–नियाज़ है। न किसी का बाप है, और न किसी का बेटा। और कोई उसका हमसर (साथी) नहीं है।

सूक्तम् एकोऽप्रतिमः

ब्रूह्येकोऽप्रतिमोऽल्लाहोऽ;ल्लाहश्चासौ विनाश्रयम्। सर्वाधारो नपत्यश्च नापत्यं स च कस्यचित्।। न तस्य प्रतिमा चाऽस्ति (योऽतिरिच्य स्थितोऽखिलान्)।

कुरआन के प्रसिद्ध 'सूर काफ़िरून' का नामकरण अनुवादक ने 'सूक्तम् श्रद्धाविहीनाः किया है। काफ़िर शब्द का अनुवाद विद्वान अनुवादक ने श्रद्धाविहीनः किया है जो सर्वथा सटीक प्रतीत होता है। मूल अरबी सूर के साथ इसका अनुवाद इस प्रकार है–

सूर ए काफिरून

कुल् या अय्युहल् काफ़िरून। ला अ अ्–बुदु मा त अ्–बुदून। व ला अन्तुम् आबिदू–'न मा अ अ् बूद। व ला अन आबिदुम्–मा अबत्तुम्। वला अन्तुम् आबिदू–न मा अअ् बुद। लकुम् दीनुकुम् वलि– य दीन।

अनुवाद–

कथ्यताम् श्रद्धाविहीना भो! यजध्वे यं न तं त्वहम्।

यजेऽ; ह०च यजे यं तं यजध्वे न पुनस्तथा

यक्ष्ये नाहव्य यं यूयं यक्ष्यध्वे पुनरेव च

प्रणालीमे मयैवस्याद् युष्माभिर्वश्चतिष्ठताम्

कुरआन के 'सूर ए ज़िलज़ाल' में क़यामत में होने वाले भूकम्प का वर्णन अत्यन्त भयावह रूप में किया गया है। 'सूर ए ज़िलज़ाल' का नाम अनुवादक ने 'सूक्तम् ज्याचालः' दिया है।

सूर ए ज़िलजाल

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

इज़ा जुल्ज़िल–लतिलअर्ज़ ज़िल्ज़ालहा। व अख़्–र–ज़तिल अर्जु अस्कालहा। व क़लल–इन्सानु मा लहा। यौमइ–जिन् तुहद्दिसु अख़्–बारहा। बि अन्–न रब्ब–क औहा लहा। यौमइजिय्यस्दुरून्नासु अश्तातललियुरौ अअ मालहुम्। फमय्य अ–मल् मिस्का–ल जर्रतिन् ख़ैरय्यर। व मय्यअ–मल् मिस्का–ल जर्रतिन् शर्रय्यर।

'जब ज़मीन भूचाल से हिला दी जायेगी। और ज़मीन अपने (अन्दर के) बोझ निकाल डालेगी। और इन्सान कहेगा इसको क्या हुआ है। उस दिन वह अपने हालात बयान कर देगी। क्योंकि तुम्हारे परवरदिगार ने उसको हुक्म भेजा (होगा।) उस दिन लोग गिरोह–गिरोह आयेंगे ताकि उनको उनके आमाल दिखला दिये जाये। तो जिसने ज़र्रा भर भी नेकी की होगी, वह उसको देख लेगा। और जिसने ज़र्रा भर बुराई की होगी, वह उसे देख लेगा।'

सूक्तम् ज्याचालः

यदा ज्याचालनं तावत् चरमं भावयिष्यते।

ज्या पुनस्सर्वमन्तस्य भारं चैवोद् गिरिष्यति।

मानवो वक्ष्यती–यं का विग्नतैनां प्रबाधते

वक्ष्यतीयं तदोदन्तमशेषं घटितं स्वतः

यतस्सा प्रेरिता तावत् प्रभुणा वो भविष्यति।

व्रजिष्यन्ति तदा लोका वर्गशस्संगता अभि।

येन यद् यत् कृतं तेषांतत्तत् संदर्शितं भवेत्।

अणुमात्रं कृतं भद्रं द्रक्ष्यति तैरसावपि

अणुमात्रं कृतं पापं द्रक्ष्यति तैरसावपि।

अनुवादक ने अपनी सूक्ष्मदर्षिता का परिचय देते हुये अनेक मूल शब्दों के अनुवाद नहीं प्रस्तुत किये हैं। इस विषय में अधिकांश उलमावर्ग (मुस्लिम धर्मुरु) कुछ मूलशब्दों के साथ छेड़छाड़ के पक्षधर नहीं हैं।

यथा– अल्लाह, मुहम्मद, रसूल, लुक़मान इत्यादि। यद्यपि स्वयं मुस्लिम जगत में अरबी भाषा के अल्लाह शब्द का फ़ारसी अनुवाद 'खुदा' प्रचलित है, जो कि पूर्व में पारसियों के सर्वोच्च देवता के लिए प्रयुक्त होता था। अल्लाह में सदा हृदय एवं मन को रमाये रहने वाला मुसलमान 'मोमिन' कहा जाता है इसके लिए सांस्कृतं कुराणम् में 'मन्मनसः' शब्द का प्रयोग है। इसी प्रकार इस्लाम के उद्भव के समय अरब में, इस्लाम एवं पैगम्बर के बढ़ते वर्चस्व को देखकर बहुत से व्यक्तियों ने प्रत्यक्षतः तो इस्लाम स्वीकार कर लिया किन्तु अन्तःकरण से वे विश्वासघात में लगे रहे। कपट व्यवहार करने वाले ऐसे व्यक्ति 'मुनाफ़िक' कहे जाते थे। 'मुनाफ़िक' के लिए पाशण्डिनः शब्द का प्रयोग किया गया है।

पैग़म्बर के मित्र एवं सहायकगण 'सहाबा' कहे जाते हैं। सहाबा के लिए 'सहायाः' शब्द का व्यवहार किया गया है।

इस्लाम के आगमन के पूर्व अरब के विभिन्न कबीलों में बहुदेववाद एवं मूर्तिपूजा का प्रचार–प्रसार था। तत्कालीन समाज में पूजित देवियों लात एवं उज्जा के लिए क्रमशः 'ललिता' एवं उशजा शब्द का प्रयोग किया गया है। यगूस नामक देवता के लिए यजूश् शब्द का प्रयोग है।

मूर्तिपूजा के लिए 'बुतपरस्ती' शब्द का प्रयोग बहुधा फ़ारसी–उर्दू में प्रचलित है। यह शब्द अरबी के बुत एवं फ़ारसी

के परस्तिश शब्द से मिलकर बना है। इतिहासविदों एवं भाषाविदों की ऐसी धारणा है कि अरबी का बुत शब्द बुद्ध से आया है। उस क्षेत्र में प्रचलित बौद्ध धर्म की यह देन उस भाषा को है। अनुवादक ने बुतपरस्ती के लिए बुद्धप्रशस्तिः शब्द का प्रयोग किया है–

शेष कुछ शब्द इस प्रकार विचारणीय है–

मक्का– (महाकाल), मदीना (मदहीनः), सय्यद (श्रेयोदः), शहीद– (सहीध्मः), मुल्ला (मौललः), मूसा (मूशः), मर्यम– (मर्यमा) महमूद (महामदः), मौलवी (मौलवित्), बुजुर्ग– (वयोरूग्), पैग़म्बर (प्रागम्बर), ज़ैनब (जिनाभः), काबा– (काव्यः), कल्मः (कल्पः), ग़ैब (गर्भ्यः)।

यह 'सांस्कृतं कुराणम्' सत्यदेव वर्मा (यमुनानगर, हरियाणा) द्वारा अनूदित है। ग्रन्थ लक्ष्मीप्रकाशन दरियागंज, दिल्ली से प्रकाशित है। अनुवादक ने सर्वजनहिताय एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को ध्यान में रखकर पवित्र कुरआन के संस्कृतानुवाद का अति प्रशंसनीय कार्य किया है। अनुवादक ने अपनी इस निर्मल भावना का उद्भावन अपने समर्पण में ही किया है–

ये हि भूमण्डलान्तर्गतदेशप्रदेशस्थाः विचारकाः
वसुधैव कुटुम्बकमितित्येवं मन्यन्ते
सर्वजनहिताय सततं चेष्टन्ते
भौतिकाध्यात्मिकस्थित्यै लोकस्य धिया प्रवर्त्तन्ते
तेभ्यो विज्ञातेभ्योऽविज्ञातेभ्यश्चासांख्येभ्य
इदम्मेऽनाहतेन नादेन सस्नेहं समर्पणम्।

इस प्रकार के अनुवाद कार्य परस्पर सांस्कृतिक सेतु निर्माण में अप्रतिम अवदान करते हैं। इस दृष्टि से यह अनुवाद–रचना अनुपम है।

सहायक ग्रन्थसूची :

1. कुरआन शरीफ (हिन्दी अनुवाद) हज़रत मौलाना फतेह मुहम्मद खाँ जालन्धरी एवं कौसर यज़दानी (अनुवादक एवं रूपान्तरकार), प्रकाशक– एम0 शफीक एण्ड सन्स 4138, उर्दू बाजार जामा मस्जिद, दिल्ली
2. कुरआर शरीफ (हिन्दी अनुवाद) (1971) मु0 फारूख़ खान (अनुवादक), मकतबा अल् हसनात रामपुर (उ0प्र0)
3. सांस्कृतं कुराणम् (1990), वर्मा सत्यदेव, लक्ष्मी प्रकाशक, 7112, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली
4. ऋग्वेद सूक्त चयनम् (2008), पाठक प्रो0 जमुना प्रसाद, सिंह प्रो0 उमेश प्रसाद, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी (उ0प्र0)

प्रसिद्ध कवि इकवाल के गुरू थे –मौलवी मीर हसन। उनसे शिक्षा पाकर वे अरबी, फारसी के विद्वान बन गये। एक बार उन्हें अंग्रेजी सरकार ने 'सर' की उपाधि से सम्मानित करना चाहा। इस पर उन्होंने कहा – 'यह उपाधि जब तक मेरे गुरू को नहीं मिलती मैं इसे अस्वीकार करता हूँ क्योंकि मेरे गुरू ने ही मुझे इस योग्य बनाया है।' इकबाल की बात स्वीकार की गई। पहले गुरू को ही सम्मानित किया गया, पश्चात इकबाल को। सभी उनकी 'गुरू के प्रति श्रद्धा' से प्रभावित हुई।

आलेख

वर्त्तमान का स्थिति बोध

डॉ0 अश्विनी
भागलपुर
मो0 : 9470023033

आज के दौर में मनुष्य कठिन से कठिनतम या फिर सरल से सरलतम होता चला जा रहा है। मनुष्य के संबंध में परस्पर यह दोहरा मापदण्ड या विचारधारा तथा दोहरी मानसिकता एवं दोहरी अभिव्यक्ति क्या विरोधाभाषी, हास्यास्पद एवं तथ्य से परे नहीं लगता। यह कैसे हो सकता है कि आदमी एक साथ कठिन से कठिनतम या सरल से सरलतम होता चला जा रहा है। कहा जा सकता है कि यह बकवास एवं भ्रामक विचार है जो अनूभूतिजन्य तथा तथ्यपरक कहीं से भी नहीं लगता।

आज के मनुष्य के सम्बन्ध में कोई भी अभिमत, आकलन–मूल्यांकन या मनोवैज्ञानिक आधार एवं व्याख्या सही भी हो सकती है और गलत भी हो सकता है आज का जो माहौल है– जो उथल–पुथल चल रहा है ऐसी स्थिति में किसी भी प्रकार का स्वाभाविक समायोजन कहीं भी किसी के साथ भी बड़ा कठिन प्रतीत होता है। लेकिन एक सम्यक धारणा के साथ मानवीय चेस्टाओं, चिंतन–चिन्ता एवं सामाजिक सरोकारों तथा दायित्वों का अध्ययन–अध्यापन और पड़ताल लाजिमी हो गया है। आज की यह दुनिया नई दुनिया है, नयी पीढ़ियों की दुनिया, नये लोगों की दुनिया तभी तो एक पीढ़ी का दूसरी पीढ़ी के बीच की दूरी बढ़ती चली जा रही है– चीजें तेजी से बदलती जा रही हैं और हम देखते चले आ रहे हैं। हमारी आंखों के सामने चलचित्र की तरह सबकुछ चल रहा है लगता है सबकुछ तिलस्मी या चमत्कारी अंदाज में देखा और खेला जा रहा है। हकीकत के आइने में सबकुछ स्पष्ट एवं पारदर्शी दिखाई पड़ता है जो हम देखते हैं वह है नहीं और जो है ही नहीं उस पर बातें हो सकती है उसे जीवन के साथ जोड़ा नहीं जा सकता, उसे माना नहीं जा सकता– उसे जीवन में उतारा भी नहीं जा सकता। रेगिस्तान चमक में भटकने के अलावा पाया कुछ भी नहीं जा सकता है– यह एक भटकाव है– बदलाव का दर्शन दिशा कहीं से भी नहीं है। हमें जीना है– कुछ करना है बेतरतीब ढंग से नहीं व्यवस्थित तरीके से। गैर– जरूरी चीजों एवं विचारों से हम इत्तिफाक नहीं रखते। हमें अपने अंदाज में देखना–जीना और चलना अच्छा लगता है। ऐसा नहीं है कि सबकुछ गलत ही चल रहा है– हो सकता है कोई हमें जीवन एवं समझ से परे भी कहें– हमसे शत–प्रतिशत इत्तिफाक नहीं रखें हमें टकराव या अतिरेक मानना सरासर भूल होगी। हमें कोई लक्ष्मण रेखा नहीं खींचनी है– हमें देखना है कि बारीक से बारीक चीजों को और एक व्यावहारिक जीवन दर्शन की ठोस जमीन पर खड़ा रहना–टिके रहना है पुरी हिम्मत एवं मिजाज के साथ। कुछ चीजें टुटेंगी – कुछ चीजें जुड़ेंगी लेकिन सबकुछ अपनी लय और गति में चलता रहेगा। हम साक्षी भाव एवं स्थायी भाव के व्यापक फलक पर समग्र चित्र विधान को स्वयं के आनंद स्वरूप में तिरोहित–समाहित करने की स्थिति बनाने का प्रयास करते रहेंगे। हमें युद्ध करना है क्योंकि स्वयं के अंदर बैठे रावण को मारना है, हमें संघर्ष करना है अन्दर के तमाम कुत्सित विकारों तथा संस्कारों को मिटाने के लिए। यह यज्ञ भूमि है हमें यज्ञ करना है अंदर के चैतन्य भाव एवं संकल्प–चेतना को जगाने तथा प्रखर बनाने के लिए।

आज मतलब की इस दुनिया में स्वार्थलोलुप लोगों की भीड़ में आदमी भेड़िये की तरह हिंसक एवं खून के प्यासे हो गये हैं। हताश–निराश लोगों की यह जमात आनन–फानन में अपने मतलब की चीजें पाने को सभी सामाजिक वर्जनाओं कर्त्तव्यों को भूल बैठे हैं। क्या कहूँ– कैसे कहूँ– किससे कहूँ– पीड़ाजन्य एवं परिस्थितिजन्य मानवीय कथायें। कौन सुनने–समझने को तैयार हैं तथारचित आधुनिक मानवों की विस्मयकारी–रहस्यपूर्ण आदमीनामा। आज धरती, आकाश, अंतरिक्ष या पूरी प्रकृति में हहाकार, कोलाहल एवं अशांति के जिम्मेवार एवं कारक तत्व कौन हैं। आधुनिक सभ्य समाज सभ्यता, संस्कार के ज्ञाता, संवाहक एवं पुरोधा स्वयं को घोषित करने–बताने में रात भर भी गुरेज नहीं करते लेकिन व्यावहारिक जीवन में इसे चरितार्थ करने या जीने में लोग कितने ईमानदार एवं साहसी हैं यह उनके चाल–चरित्र और चेहरे से स्पष्ट हो जाता है। निष्ठा–विश्वास एवं कर्त्तव्य का मायने कहीं हासिये पर

छूटता चला जा रहा है। आदमी के चेहरे पर लगे मुखौटे ने आदमी होने का अर्थ एवं सारभूत समीकरण ही बदल दिया है। लगता है आदमी इतिहास, भूगोल, गणित, सामाजिक शास्त्र या विज्ञान का अतिक्रमण कर स्वयं को लाक्षणिक किरदार में प्रस्तुत करना उनके काबिल होने का सबसे बड़ा प्रमाण हो सकता है। प्रतीत होता है अर्थ ही अनर्थ का सबसे बड़ा कारण है और अनर्थ भी अर्थ का ही पर्याय है और तमाम अर्थों–अनर्थों के मूल में आज का मनुष्य ही है जो समस्या पैदा करता है– समस्याओं में जीता–जागता है जबकि मनुष्य किसी समस्या या संकट का सबसे खुबसूरत और बेहतर समाधान है। लेकिन मनुष्य क्या चाहता है– कहां रहना चाहता है– कहां जाना चाहता है कोई नहीं जानता और स्वयं मनुष्य भी नहीं जानता है, उसे क्या करना है– क्यों करना है क्योंकि वह बहुत दूर भागता–फिरता, भटकता–गिरता चला जा रहा है। वह अनजान है स्वयं से, नहीं जानता है स्वयं में घनीभूत अक्षय उर्जा श्रोत एवं अमृतधारा को। उसे स्वयं के होने को बोध ही नहीं है कोई अहसास ही नहीं है जो स्वयं की गहराई में उतरकर मंथन–चिंतन से जीवन तत्व की प्राप्ति का सम्पूर्ण अर्थ जान सके। इसी प्राप्ति में मानव कल्याण एवं उनके पोषण की सर्वमान्य परिभाषा एवं व्याख्या भी है जो नीति सार कथाओं का तात्विक जीवन संदेश भी है। मनुष्य स्वयं में एक महाग्रंथ– एक महान शास्त्र एवं सर्व औषधी विज्ञान भी है। आज समय की मांग है कि हमने ग्रंथों–शास्त्रों को बहुत पढ़ा–अध्ययन–अध्यापन एवं अनुशीलन–विवेचन भी किया मगर जीवन का संताप, क्लेश एवं विकारों का अंत नहीं हुआ इसीलिए अब आदमी को पढ़ा जाना चाहिए– जबतक मनुष्य को सम्पूर्णतः नहीं पढ़ा जाएगा तबतक सर्व– समावेशी बोधगम्य जीवन की कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि मनुष्य ही समाधन शास्त्र एवं विज्ञान संवाद सूत्र के बीजक ग्रंथ है। मनुष्य को पढ़ने–जानने के लिए हमें स्वयं में उतरना पड़ेगा स्वयं को देखना–समझना पड़ेगा। यद्यपि यह एक साहसपूर्ण कार्य है– हिम्मतवर लोग ही ऐसे कार्यों को अंजाम तक ले जाने में सक्षम–समर्थ हो सकते हैं। आज भी आदमी भयभीत है पराश्रित, दुःखी एवं व्याधिग्रस्त है। गुत्थियों–ग्रंथियों एवं कुण्ठा में जीने वालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। अनायाश आदमी के बदलते मिजाज को जान पाना या समझ पाना किसी की भी समझ के बाहर की बात है। तर्क या अनुमान के आधार पर हम वही कहते–करते हैं जो सही या सटीक, कहीं से भी सम्पूर्णतः नहीं लगता है। आज अतिरेक, में अतिरंजना में ढेर सारी बातें अनचाहे–अनजाने होती चली जाती है।

ईमानदारी से हमें उस सत्य को खोजना–जानना है जिसे झूठ की चासनी में घोलकर आदमी के जेहन में साफगोई के साथ उतारा जा रहा है। हम जानते हैं यह कार्य आदमी को मानसिक रूप से विकलांग एवं शारीरिक रूप से शिथिलांग बनाने की साजिश एवं वहशी सोच का खेल है। फिर भी हम आंख मूंद कर समझौता परस्त होकर, चुपचाप बैठे हैं। अपनी हालत एवं आगत पीढ़ियों के खतरों को नजर अंदाज करना मूर्खतापूर्ण भ्रामक–पाप है। जुल्म और अन्याय के खिलाफ विरोध या संघर्ष ही एकमात्र मजबूत हथियार या उपाय अंततः बचता है। हम जानते हैं सत्य एवं संयम के हाथ–पांव बंधे होते हैं– एक कायदे–तरीके से चलते–चलाते हैं मगर ऐसा भी नहीं है कि हमने जमीर को ही बेच डाला है। अन्याय के खिलाफ जंग का ऐलान सबसे बड़ा पुरूषार्थ एवं नवनिर्माण का मुकम्मल दिशा–दर्शन है।

मनुष्य कायनात की सुन्दरतम रचना है उनके अंदर ईश्वरीय किताब है– उनके अंदर ईश्वर बसता है–ईश्वर बोलता है अगर नहीं तो उनकी आवाज गौर से सुनें आखिर यह आवाज कहां से आती है– क्यों आती है– कैसे आती है। इस पर गंभीरता से सोचना–विचारना तभी जान पायेंगे इस सौंदर्य सत्ता के जीवन रहस्य को। हम कभी नहीं कहेंगे कि ईश्वर को मानना है– मेरा जोर ईश्वर को जानने–देखने पर ही है– पहले जानना है–देखना है तभी मानना है नहीं तो चुकते चले जायेंगे– गिरते चले जायेंगे और आज यही चल रहा है– हमें हर किसी भी चीज को मानने के लिए राजी कर लिया जाता है और हम भी आसानी से राजी होते चले जा रहे हैं मानने में कोई पुरूषार्थ नहीं करना पड़ता है जोखिम नहीं उठाना पड़ता है– हमारे पुरखों ने माना था– जानने में समय लगता है–मेहनत लगती है– बेचैनी– परेशानी होती है–धड़कन बढ़ती है– सांसे बढ़ती है तभी तो हम परहेजी हो चले जा रहे हैं– हम कुछ छोड़ना नहीं चाहते हैं– खोना भी नहीं चाहते हैंऔर बिना छोड़े या बिना खोये किसी नये चीजों की प्राप्ति नहीं होती है। अजीब दास्तां है आज किसी से कुछ कहना– किसी का कुछ जानना–सुनना– किसी का कुछ समझना या फिर किसी को भी कुछ समझाना। लगता है आदमी ने आदमी होने की पात्रता ही खो दी है। वह दरिद्र से दरिद्रतम स्थिति को प्राप्त हो चुका है। यह कठिन वक्त है जहां आदमी कंगाली में जीते चला जा रहा है और कंगाली में दम तोड़ रहा है क्योंकि जीवन जगत को देने के लिए कुछ भी नहीं बचा है। उसने पाया ही क्या है– उसने खोया ही क्या है– उसे मिला ही क्या है उसने तो जन्म लेने के साथ ही मृत्यु को स्वीकार लिया है।

जंगल गुमसुम है– पर्वत, उपत्यकायें, नदियां, सागर,

गलियां, चौबारे–घर–आंगन सभी के सभी तो खामोशी के आगोश में डूबता चला जा रहा है। आदमी का सुबह से रात तक दौड़ना–भागना–गुर्राना–चिल्लाना–सोते हुए भी प्रलाप करना–लहूलुहान चेहरा तनी मुट्ठियां, चढ़ी हुई त्योरियां–उनकी कुरूपता एवं कठिनता तो असंतुलन होने का प्रमाण है। लगता है मुर्दो के बीच मरघटी सन्नाटे में आदमी अपनी जिंदगी एवं वजूद को तलाश रहा है। खो गया है आदमी, भटक गया है आदमी कहीं–तभी तो मुर्दा– शांति में डूबे रहना उसे अच्छा लगने लगा है। वह चिकित्सक है मगर मर्ज बढ़ता ही जा रहा है– वह सद्ज्ञान है पर अंधेरा गहराता ही जा रहा है। वह सबसे सुंदर प्राणी है मगर कुरूपता पसरता ही जा रहा है। वह सबसे बड़ा धार्मिक है लेकिन अधर्म के दलदल वहीं धसंता चला जा रहा है। वह सद्ज्ञान एवं प्रेम से नहीं– ज्ञान और विज्ञान की बाजीगरी से आमजनों को भ्रमित–विस्मित करने की कला पर इठला रहा है। वह जानता कुछ भी नहीं है लेकिन वह जानने का नाटक–नौटंकी सबसे अधिक करने लगा है। यह मेरी–आपकी एवं तथाकथित भद्रजनों की खुबसूरत दुनिया का ताजातरीन नायाब चेहरे की बानगी भर ही नहीं यह सबसे बड़े संकट का संकेत है– आखिर यह क्या है हम क्या कर रहे हैं– हम कहाँ जा रहे हैं– फिर भी हम तो कह देते हैं जो हो रहा है ठीक हो रहा है– सबकुछ ठीक चल रहा है– कुछ नहीं सोचना–जानना है आगे भी ठीक चलता रहेगा।

किस्मत या प्रारब्ध पर किसी भी चीज को छोड़ना विडम्बनापूर्ण–घातक स्थिति है जिससे अंततः आदमी का व्यक्तित्व खंडितएवं आचरण संदिग्ध होता चला जाता है– यह जीवन से भागने जैसा असामाजिक एवं कायरतापूर्ण कृत्य है। आदमी मतलब और मकसद की सीढ़ियाँ फाँदकर आसमानी ग्रहों एवं ब्रह्मांड के रहस्यों को बेपरदा करने की कवायद में लगातार लगा है मगर धरती पर फैली गंदगी–बदबू, सडांध–दुर्गध में जीते–दम तोड़ते आमजनों की दुर्दशा की चिंता करने की किसे फुर्सत हैऔर इससे उन्हें हासिल भी क्या हो सकता है। आखिर आदमी की खोज का फलितार्थ क्या है– वह क्या साबित करना चाहता है।

क्या खुशनुमा वादियां, अमृत बरसाती–दौड़ती–भागती घटायें, रसवंती मलय हवायें, गीत गुनगुनाती नदियां–मंदिर की आरती एवं घंटे, मस्जिद की अंजानें–गिरिजा की प्रार्थनायें–पुकार ये सारी क्रियायें हमारे अंदर की चेष्टायें ही तो है– क्या ये अद्भूत क्रियायें हमें अपनी ओर नहीं खींचती। सौन्दर्य के सारे सूत्र पुरूषार्थ की सारी दीक्षायें, ग्रह–विग्रह की सारी परिभाषायें आखिरकार मनुष्य प्रकृति की कोख में ही तो पलता–बढ़ता है और इन्हीं में समा जाता है।

हम क्या लिखते हैं– क्यूं लिखते हैं–किसके लिए लिखते हैं– लिखने का क्या अर्थ है किसको लिखते हैं। अगर हमें यह नहीं मालूम तो सारी लिखाई बेकार चली जायेगी। आदमी इतना भयभीत क्यों हैं–स्वयं से निराश–परेशान क्यूं है। नेपथ्य के पीछे उसे जीना क्यों अच्छा लगने लगा है– लगता है उधार के व्याक्तित्व ने उसे बौना बना दिया है तभी तो स्वयं से भी घबराने–डरने लगा है– कुछ भी सीखने से इन्कार कर दिया है तभी तो वह न प्रेम करना जानता है– न प्रेम जीना जानता है न प्रेम पीना–पाना जानता है। जीवन तो प्रेम की सम्पूर्ण कथा–कविता एवं गीत–गंगा है जो अपनी अमृत धारा में डूबोकर एक नई गति–स्फूर्ति चेतना एवं आनंद के महाभाव से लबालब भर देता है। प्रेम मनुष्य का मनुष्य के साथ जाग्रत सम्बन्ध–सन्देश है–न यह टूटता है न यह छुटता है– यह गहराता चला जाता है– जहाँ सब कुछ सुन्दर–दिव्य एवं शाश्वत स्वरूप सा दिखता है। जहां सब कुछ सुन्दर–दिव्य एवं शाश्वत स्वरूप सा दिखता है। जहां खिलता मुस्कुराता व्यक्तित्व, दमकता पौरूष, पावन कोमल हृदय एवं सर्वथा सुखद अनुभूतिजन्य जीवन गतिमान और छविमान दिखने लगता है। मनुष्य का धरती पर आना एक असाधारण घटना है वह राजा की तरह एक सुरम्य–सुखद वातावरण में जीवन्त शान्ति की गोद में अवतरित हुआ है। फिर भी अकिंचन सा– भरा–भरा सा, अलग–थलग स्वयं से दूरियां बनाकर भयभीत है। पलायन वादी होकर दुबकना उनकी नियति हो गयी है। दुसरी तरफ वो अपने पुरूषार्थ–पराक्रम की पहचान–ताकत तथा तलवार की चमक की लगातार दुहाई देते चले जा रहे हैं मगर उसे जमीन पर उतारने–चलाने की क्रियात्मक विधा को भूलते–छोड़ते चले जा रहे हैं।

आज वीभत्स अमर्यादित जनविरोधी अनगिनत लोग हैं जिसने आचरण की सीमा एवं मानवीय मूल्यों की सीमा रेखा की सारी हदें पार कर दी हैं, ऐसे ही तथाकथित लोग स्वयं को ही सर्वबोधी, सर्वमान्य चिंतक, शिखर पुरूष होने का दंभ भरते हैं और अपने पाखण्ड के शब्दजाल में फँसाकर लोगों को तरह–तरह की नसीहतें, करतबों से उलझाकर वायवीय दुनिया का वाइस्कोप दिखाते हैं। भोले–भाले लोग मोहभ्रम की स्थिति में सबकुछ देखते–चले जाते हैं लेकिन उनका जब सबकुछ लुटा जा चुका होता है तब उन्हें पता चलता है ऐसे लोग, जो उन्हें साफ सुथरे ईश्वर शरीर के लगते रहे कोई और नहीं चाण्डाल एवं पतित है जिन्हें बड़े–बड़े आकाओं का संरक्षण प्राप्त है। इन्हीं पाखण्डी रागदरवारी

में महारथ प्राप्त लोगों ने सामाजिक समरसता एवं राष्ट्रीय एकता को समय–समय पर प्रभावित किया है। हम जानते हैं उन्मादी जज्वाती एकता किसी स्थिति में समाज, देश एवं विश्व के लिए घातक एवं खतरनाक है सिर्फ जमीनी–जमाती एवं भावात्मक एकता ही किसी राष्ट्र को मजबूत एवं ताकतवर बनाता है तथा विकास की सारी संभावनाओं को गति एवं शक्ति प्रदान करता है।

जिस व्यक्ति के अंदर आत्मबोध घटित होता है उसकी आत्मशक्ति जग जाती है उसी की मेधाशक्ति प्रखर–प्रबल एवं तमाम कमजोरियां तथा ऐषनाओं से उपर उठकर समर्पित प्रतिबद्ध होकर समाज, राष्ट्र एवं विश्वग्राम को सुन्दर बनाने, वर्तमान एवं आगत पीढ़ियों को नयी दिशा–निर्देश देने का एक जीवन्त आदर्श के रूप में खड़ा होता है और लोगों के अंदर चैतन्यभाव एवं संबोधी चिंतन –दृष्टि विकसित करने में अपनी समर्थ भूमिका निभाता है। जो बोलता है वह करता नहीं है और जो करना है वह बोलता नहीं है। वह जो करता है वह व्यष्टि स्वरूप नहीं समष्टि स्वरूप हो जाता है– और वही इतिहास बनता है –

वह नयी ईबारत लिखता है– नई तकरीरें गढ़ता है– वहाँ विज्ञान टैक्नोलॉजी, वैज्ञानिक, कारपोरेट सेक्टर एवं यहाँ तक कि सरकारें भी चुक जाती हैं। अन्तिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति जो समाज के सबसे वंचित वर्ग में आते हैं वह खड़ा हो गया तो असुविधा में सुविधा की बरसात होने लगी।

उसने सामाजिक पीड़ा एवं मानवीय दु:खों को स्वयं के दु:ख से जोड़ा अनुभव किया देखा और जीया सामने खड़ी चुनौती एवं चीत्कार को सुना और उनकी भुजाओं को फौलादी आक्ति एवं अंदर में ललकार–हुँकार को गति मिली और सामने खड़े असंभव सा दीखता पर्वत जो एक विशाल आबादी क्षेत्र को तमाम सुविधाओं से महरूम कर दिया था। दशरथ मांझी जैसे संकल्पसाधक एवं उर्जा श्रोत से प्रदीप्त आत्मदर्शी तथा तत्वदर्शी ने पर्वत की छाती तोड़ कर रास्ता बनाया। आभाव में रहकर भी उसने जो पुरूषार्थ की टहनियों पर पहाड़ को रौंदनें का सपने देखा था उसे अपनी मिहनत के हथौड़े से पर्वत के सीने को चकनाचुर कर दिया। एक असाधारण घटना घटित हुई दशरथ मांझी पर्वत पुरूष एवं आदर्श स्तंभ के रूप में खड़ा हो गया। तत्वबोधी घनीभूत ज्योतिपूंज दशरथ मांझी ने अंधेरे को चीर कर विशाल क्षेत्र में जीने वाले ग्रामवासी के जीवन में मशाल जलाया– उजाला किया। प्रेम, आत्मीयता एवं भाईचारे तथा पुरूषार्थ का इतिहास रचा डाला– लोगों के जीवन में सम्पूर्ण आशा और विश्वास की नई किरण निकली– एक नई सुबह– एक नये बिहान से जीवन खिल उठा लोगों के होठों पर मुस्कान एवं चेहरे पर खुशी एवं खिलावट आयी– धरती नाच उठी– पर्वत ने पर्वत पुरूष को सलाम किया। हमें भी खड़ा होना होगा–तमाम विसंगतियों एवं सामाजिक पीड़ा को मिटाने अनगिनत लोगों को संवेदनशील एवं चेतनशील बनाने।

कहानी

नदी का तीसरा किनारा

लातिनी अमेरिकी कहानी

अनुवाद : सुंशात सुप्रिय
गौड ग्रीन सिटी,
वैभव खंड इंदिरापुरम, गाजियाबाद
मो0 : 8512070086

(लातिनी अमेरिकी लेखक जो आओ गुइमारेस रीसा की कहानी
''थर्ड बैंक आफ द रिवर '' का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद
मूल लेखक– जोआओ गुडमारेस रोसा)

पिता एक जिम्मेदार भरोसे के काबिल और व्यावहारिक आदमी थे। बचपन से ही वे ऐसे ही थे। जब मैंने पिता को जानने वाले लोगों से उनके बारे में पूछा तो उन सभी लोगों ने पिता के बारे में यही राय व्यक्त की मुझे याद नहीं आता कि वे अपने आस पास के लोगों की तुलना में कभी ज्यादा धुनी या रूखी मिजाज़ वाले लगे हों। हाँ वे बातें कम ही किया करते थे। हमारी माँ ही हर रोज हम तीनों को मुझे मेरी बहन और मेरे भाई को डाँटती फटकारती या आदेश दिया करती थी। लेकिन एक दिन मेरे पिता ने अपने लिए एक नाव मंगवाई।

उन्होंने इस मामले को गंभीरता से लिया ।उन्होंने अपने लिए बढ़िया मिमोसा काठ की नाव बनबाई। वह आकार में छोटी थी। और उसमें केवल एक आदमी के बैठने की जगह थी। वह पूरी तरह से हाथ से बनी हुई मजबूत किस्म की लकड़ी की नाव थी, जो बीस तीस बरस

तक आराम से चल सकती थी। माँ नाव बनाने के विचार तक का मजाक उड़ाती रहती। वह पूछती– जिस व्यक्ति ने अपने समूचे जीवन काल में कभी ऐसे करतबों में अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाया , वह अपने जीवन के इस मुकाम पर अब नाव में बैठ कर मछली पकड़ने और शिकार पर जाने की बात सोच भी कैसे सकता है? पिता कुछ नहीं कहते।

तब हमारा घर नदी में एक मील से भी कम की दूरी पर था। हालांकि अब यह दूरी बढ गई है। घर के इतने करीब वह नदी बहती रहती – चौड़ी गहरी और शांत। सदा खामोशी से बहती हुई। वह इतनी चौड़ी नदी थी कि उसका दूसरा किनारा नजर ही नहीं आता था। मैं वो दिन कभी नहीं भूल सकता जिस दिन नाव बन कर तैयार हो गई।

पिता ने न कोई खुशी जाहिर की न उत्साह न ही निराशा सदा की तरह उन्होनें अपनी टोपी पहनी हमें अलविदा कहा और चल पड़े। उन्होंने एक भी शब्द और नहीं कहा, किसी भी तरह का खाना या और कोई समान नहीं लिया और न ही जाते जाते हमें कोई सलाह ही दी। हमें लगा जैसे माँ को चीखने चिल्लाने का दौरा सा पड़ जाएगा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। केवल उनके चेहरे का रंग उड़ गया और दाँतों से अपने होठ काटते हुए वे कड़वाहट से भर कर बोली ''तुम्हारी मर्जी है जाओ चाहे यहीं रहो। लेकिन अगर जा रहे हो तो फिर कभी लौट कर नहीं आना।

पिता की चुप्पी रहस्यमयी बनी रही। उन्होंने प्यार से मेरी ओर देखा और मुझे अपने साथ ले कर चलने लगे। मैं माँ के गुस्से से डर रहा था लेकिन मैं फिर भी पिता के साथ हो लिया। हम नदी की ओर बढ़ने लगे। मैं उनके साथ आश्वस्त महसूस कर रहा था रोमांच से भर कर मैंने उनसे पूछा ''पिता जी क्या आप अपनी नाव में मुझे भी ले चलेंगे?''

लेकिन उन्होंने मुझे आँख भर कर देखा, अपना आशीर्वाद दिया और इशारे से मुझे लौट जाने के लिए कहा। मैंने उन्हें दिखाने के लिए लौटने का नाटक भी किया पर जैसे ही वे मुड़े, मैं उन्हें देखने के लिए घनी झाड़ियों से ढँके एक गड्ढे में छिप कर बैठ गया। पिता नाव में बैठे, नाव की रस्सी खोली और उसे खेते हुए दूर निकल गए। नाव की लम्बी परछाईं पानी में किसी मगरमच्छ की तरह फिसलती चली गई।

पिता कभी नहीं लौटे। असल में वे कहीं ज्यादा दूर गए भी नहीं थे। वे नदी के ही एक हिस्से में नाव खेते रहे। उनकी नाव बीच नदी के उसी हिस्से में इधर–उधर आती–जाती रही। वे हमेशा नाव में ही रहते। उन्हें किसी ने फिर कभी नाव से बाहर नहीं देखा। यह अजीब सच्चाई हम सभी को भयभीत करने के लिए काफी थी। जो आज तक कभी नहीं हुआ था, वह हो रहा था। हमारे रिश्तेदार, पड़ोसी और जान–पहचान वाले, सभी इस अद्‌भूत घटना पर चर्चा करने के लिए इकट्ठा हुए।

माँ ने बेहद समझदारी से काम लिया। उन्होंने धीरज बनाए रखा। हालाँकि किसी ने भी यह बात नहीं कही, लेकिन लगभग सभी का यही मानना था कि पिता पागल हो गए थे। केवल कुछ लोग ही ऐसे थे जिनका यह मानना था कि शायद पिता ईश्वर को दिया गया कोई वचन निभा रहे थे। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि सम्भवतः पिता को कोढ़ जैसी कोई भयानक बीमारी होगी जिसकी वजह से वे एक दूसरा जीवन जीने के लिए हमें छोड़ कर दूर चले गए थे। किंतु दूर हो कर भी वे हम सब के पास ही रहना चाहते थे।

नदी के किनारे रहने वाले लोगों और यात्रियों से यह खबर चारो ओर फैल गई थी कि पिता अब जमीन पर कदम कभी नहीं रखते थे न दिन में, न रात में। इंसानों से दूर वे अकेले और दिशाहीन–से नदी में भटकते रहते। माँ और हमारे अन्य रिश्तेदारों का मानना था कि पिता ने ज़रुर नाव में कुछ खाना छिपा कर रखा होगा जो जल्दी ही खत्म हो जाएगा। ऐसी हालत में उन्हें यहाँ नहीं तो किसी और जगह नाव को किनारे पर ला कर ज़मीन पर आना ही पड़ेगा। इसका मतलब यह होगा कि या तो वे हमेशा के लिए हमसे दूर कहीं चले जाएँगे या फिर अपने किए पर पछता कर वे घर लौट आएँगे।

लेकिन वे सब ग़लत थे। मैं गोपनीय तरीक़े से प्रतिदिन पिता के लिए कुछ खाना चुरा लेता था। यह विचार मेरे मन में उसी पहली रात को ही आ गया था जब पिता के जाने के बाद परिवार के हम सब सदस्य नदी के किनारे लकड़ियाँ जला कर प्रार्थना करते रहे थे और अधीरे हो कर पिता को पुकारते रहे थे। उस दिन के बाद से हर रोज़ मैं पिता के लिए एक पूरी पाव रोटी, शक्कर या केले का गुच्छा ले कर नदी के किनारे जाता। एक बार एक घंटे तक बेचैनी से प्रतीक्षा करने के बाद पिता नज़र आए। आइने–सी चिकनी नदी में वे अपनी थिरकती नाव में शांत बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे देखा पर न तो वे मेरी ओर आए, न कोई इशारा ही किया। मैंने खाना उन्हें दिखाया और फिर नदी के किनारे पत्थरों के घिसने से बनी एक खोह के अंदर रख दिया। जानवरों, बारिश और ओस से वहाँ खाना सुरक्षित रहेगा, मुझे इसका यक़ीन था। हर रोज़ लगातार, मैंने ठीक वैसा ही किया। हालाँकि बाद में मैं यह जानकर हैरान हुआ कि माँ को सब पता था। माँ जानबूझ कर खाना ऐसी जगह रख देती थी जहाँ से मैं आसानी से ले जा सकूँ। पिता के बारे में अपनी भावनाओं को उन्होंने कभी ज़ाहिर नहीं किया।

बाद में खेती–बाड़ी और हिसाब–किताब में मदद के लिए माँ ने अपने भाई को अपने पास बुला लिया। हम बच्चों के लिए भी एक शिक्षक नियुक्त कर दिया गया ताकि हमारी पढ़ाई ठीक तरह से हो सके। माँ के कहने पर एक दिन एक पुरोहित पूजा का लिबास पहन कर नदी के किनारे गया और झाड़–फूँक करके पिता पर हावी भूत–प्रेत को भगाने लगा। उसने चिल्ला कर पिता से कहा कि उन्हें यह मूर्खतापूर्ण ज़िद छोड़ कर अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को निभाना चाहिए।

अगली बार माँ ने पिता को डरा–धमका कर वापस बुलाने के लिए दो सिपाहियों को नदी के किनारे भेजा। लेकिन ये सभी उपाय

बेकार साबित हुए। पिता किनारे से दूर बने रहे। कई बार वे इतनी दूर चले जाते कि नदी के धुँधलके में वे बड़ी मुश्किल ने नज़र आते। चूँकि कोई उनकी नाव के करीब नहीं जा पाता इसलिए न तो कभी कोई उन्हें छू पाया, न उनसे बात ही कर पाया। चिल्लाने पर भी वे जबाब नहीं देते।

कुछ अख़बार वाले जब एक बार बड़ी नाव में बैठ कर उनकी तस्वीर खींचने गए तो वे भी बाक़ी लोगों की तरह असफल रहे। पिता अपनी नाव खे कर दूसरे किनारे पर चले गए। वहाँ वे झाड़ियों में जा छिपे। दूसरे किनारे पर मीलों तक दलदल और घनी झाड़ियाँ थीं। केवल वे ही नदी के उस इलाक़े का चप्पा–चप्पा जानते थे। अन्य लोग वहाँ रास्ता खो जाते थे। इसलिए भूल–भुलैया जैसी अपनी निज़ी पनाहगाह में वे महफ़ूज़ थे।

हमें इस बात का आदी हो जाना चाहिए था, लेकिन यह मुश्किल था और हम कभी ऐसा नहीं कर सके। मेरा तो यही मानना है। चाहे–अनचाहे मेरी सोच घूम–फिर कर उसी बिंदु पर आ जाती थी। मैं पिता के बारे में फ़िक्र करने से खुद को नहीं रोक पाता था। मैं समझ नहीं पाता था कि वे ऐसा जीवन कैसे जी पा रहे थे। भयानक गर्मी और ठिठुरती सर्दी में, यहाँ तक कि साल के बीच के मुश्किल समय में भी वे बिना छत या सुरक्षा के कैसे जी पा रहे थे? उनके सिर पर केवल एक टोपी थी और तन ढँकने के लिए बेहद कम कपड़े थे। फिर भी वे सप्ताह–दर–सप्ताह, महीने–दर–महीने, साल–दर–साल, एक अर्थहीन, लक्ष्यहीन, जीवन जीते चले जा रहे थे। पिता कभी ज़मीन पर नहीं आए। उन्होंने कभी रेतीले किनारे या घास पर पाँव नहीं रखा। वे कभी नदी में मौजूद किसी छोटे द्विप पर भी नहीं उतरे।

यह सम्भव है कि झपकी लेने के लिए कभी–कभार वे अपनी नाव को किसी टापू के गुप्त कोने में झाड़ियों से बाँध देते होंगे। लेकिन उन्होंने कभी किनारे पर आ कर आग नहीं सुलगाई, न ही कभी लालटेन या मोमबत्ती जलाई। यहाँ तक कि उन्होंने कभी माचिस की तीली भी नहीं जलाई। उनके पास कोई ट्रॉर्च भी नहीं थी। अंजीर के पेड़ की जड़ों के पास बने खोखल में या नदी के किनारे की चट्टान की खोह में मैं उनके लिए जो खाना रख आता था उसमें से वे बहुत कम ही खाते थे। क्या केवल उतना ही जीवित रहने के लिए पर्याप्त था? क्या वे कभी बीमार नहीं होते थे? नाव को काबू में रखने के लिए लगातार चप्पू चलाते रहने की शारीरिक ताक़त उन में कहाँ से आती होगी? वह भी तक जब बीच–बीच में नदी में बाढ़ के तेज बहाव के साथ मरे हुए पशुओं और जड़ से उखड़े पेड़ों की वजह से खतरा और भी बढ़ जाता था। ऐसी दशा में वे खुद को और अपनी छोटी–सी नाव को कैसे बचा पाते होंगे? यह सब कितना डरावना और ख़तरनाक होता होगा ।

पिता ने कभी किसी जीते–जागते इंसान से बात नहीं की। हम भी अब उनके बारे में आपस में बात नहीं करते थे, हालाँकि हम उनके बारे में सोचते ज़रुर थे। पिता को कभी भुलाया नहीं जा सकता था। यदि कभी–कभार पल भर के लिए हम उन्हें अपने ज़ेहन से निकाल देते तो भी कुछ देर बाद अचानक उनकी याद हमें एकाएक साथ जगा जाती ... वे जिस भयावह स्थिति में अपना जीवन जी रहे थे वह हमें बार–बार चौंका देने के लिए काफ़ी थी ।

मेरी बहन का ब्याह हो गया, किंतु माँ ने यह समारोह बिना किसी ताम–झाम के, बेहद सादगी से पूरा किया। जब भी हम कुछ अच्छा खाते–पीते तो हमें पिता का ख़्याल आ जाता। यह बात हमें दुखी कर देती और यह भी कि मूसलाधार बारिश वाली सर्द, तुफ़ानी रातों में जब हम आरामदेह बिस्तरों में होते तब पिता अकेले अपनी असहायता में खुद को और नाव को बचाने की जद्दोजहद में जुटे होते ।

जान–पहचान वाले लोग अक्सर मुझे देख कर कह देते कि मेरी शक्ल अब मेरे पिता से मिलने लगी है। लेकिन मैं जानता था कि अब उनके बाल बढ़ चुके होंगे और दाढ़ी बेहद खुरदरी और सफ़ेद हो चुकी होगी। उनके नाखून भी बेहद बढ़ गए होंगे। मैं कल्पना कर सकता था कि अब वे कितने दुबले–पतले, कमज़ोर और बीमार लगते होंगे। हालाँकि मैं कभी–कभार खोह में उनके लिए कपड़े रख आता था, मुझे पता था कि अब वे लगभग नग्न ही होंगे। धूप में झुलसी उनकी त्वचा भी अब बड़े–बड़े बालों वाले किसी जानवर–सी हो गई होगी। पिता के बारे में सोचते ही मेरे ज़ेहन में उनकी यही छवि उभरती थी।

पिता ने हमारे बारे में जानने की कभी कोई कोशिश नहीं की। क्या उन्हें हमारी ज़रा भी परवाह नहीं थी? लेकिन मैं उनसे अब भी प्यार करता था, उनकी इज़्जत करता था। जब भी कोई किसी बात के लिए मेरी तारीफ़ करता तो मैं यही कहता ... ''यह सब करना मुझे पिताजी ने सिखाया था ।''

यह बिलकुल सच तो नहीं था लेकिन इस झूठ में सच्चाई भी थी। यदि पिता अब हमें भूल चुके थे और हमारे बारे में नहीं सोचते थे तो वे हमसे दूर नदी से और आगे क्यों नहीं चले जाते थे जहाँ से न वे हमें देख सकते, न हम उन्हें देख पाते? वे क्यों हमारे आस–पास ही बने हुए थे? इन प्रश्नों के उत्तर तो केवल वे ही दे सकते थे।

जब मेरी बहन ने बेटे का जन्म दिया, उसने ठान लिया कि वह पिता को उनका नाती दिखाएगी। परिवार के हम सब सदस्य नदी के किनारे पहुँचे। वह एक खुशनुमा दिन था। मेरी बहन ने शादी का सफ़ेद जोड़ा पहन रखा था। उसने अपने बेटे को ऊपर उठाया और बच्चे के पिता ने उन दोनों के ऊपर एक छतरी तान दी। हमने पिता को आवाज़ दी और फिर इंतज़ार करते रहे। बार–बार पुकारने के बावजूद पिता नहीं आए। मेरी बहन फूट–फूट कर रोने लगी। अंत में वहाँ एक–दूसरे के गले लग कर हम सब बिलख–बिलख कर रोए। किंतु पिता नहीं आए।

इस घटना के बाद मेरी बहन और मेरे जीजा रहने के लिए कहीं दूर चले गए। मेरा भाई भी रहने के लिए किसी और शहर में चला गया। समय तेज़ी से गुज़रता रहा। माँ बूढ़ी हो रही थी। अंत में वह भी रहने के लिए मेरी बहन के पास चली गई। केवल मैं वहीं रह गया। अकेला। शादी करके फिर से परिवार बसा लेने का ख़्याल मेरे मन में कभी नहीं आया। अपने जीवन की विडम्बनाओं से घिरा हुआ मैं वहीं रुका रह गया। हालाँकि पिता ने कभी मुझे नदी में अपने निर्धारित भटकने का कारण नहीं बताया, मुझे पता था कि उन्हें ज़रुरत थी। अंत में मैंने निश्चय किया कि मुझे पिता के इस अजीब व्यवहार का कारण जानना ही है। तब लोगों ने बताया कि शायद पिता ने अपनी यात्रा की वजह उस आदमी को बताई होगी जिसने उनकी नाव बनाई थी। लेकिन अब उसकी भी मृत्यु हो चुकी थी और किसी को भी ठीक से इस बारे में कुछ भी पता या याद नहीं था। हाँ, कुछ लोगों ने ज़रुर कुछ मूर्खतापूर्ण बातें बताईं। उन लोगों के मुताबिक बहुत पहले एक बार नदी में भयानक बाढ़ आई थी। तब सब को लगा था कि लगातार हो रही मूसलाधार बारिश की वजह से आई वह प्रलयकारी बाढ़ सब को लील जाएगी। उन लोगों का कहना था कि शायद पिता आने वाले प्रलय पहले सुनी थी हालाँकि अब मुझे यह ठीक से याद नहीं थी। कुछ भी हुआ हो, मैं अपने पिता को कभी दोष नहीं दे सकता था। अब तो मेरे सिर के बाल भी सफेद होने लगे थे।

मेरे पास कहने के लिए केवल अफ़सोसनाक बातें थीं। इन सब के लिए बराबर मैं खुद को दोषी क्यों मानता था? क्या इसकी वजह मेरे पिता थे? उनका इस तरह चला जाना था? उनकी कमी का शिद्दत भी अहसास था? या फिर वह नदी थी जो अनंत से अनंत तक बहती थी, सदा नवजीवन से भरी हुई। जिसमें पिता भटक रहे थे।

मैं बूढ़ा होने लगा था। यह अवश्यंभावी था, मेरा यह जीवन केवल उसे मुल्तवी कर रहा था। मैं चिड़चिड़ा हो गया था। बीमार और बेचैन रहने लगा था और पिता? आख़िर उन्होंने ऐसा क्यों किया? यक़ीनन से बहुत कष्ट झेल रहें होंगे। अब तो वे बहुत बूढ़े हो चुके थे। हो सकता है, अपने जीवन के इस अंतिम समय में किसी दिन वे नाव को उलट जाने दें। या जब नदी में बाढ़ आए तो वे चप्पू चलाना बंद करके नाव को उफ़नती धारा के हवाले कर दें ताकि नाव किसी शोर मचाते जल–प्रपात की विराट ऊँचाई से गिर कर नदी की अतल गहराई में सदा के लिए विलीन हो जाए। मेरा जीवन तनावपूर्ण बना हुआ था। पिता वहाँ नदी में भटक रहे थे। यहाँ मेरी सुख–शांति हमेशा के लिए छिन गई थी। पता नहीं क्यों, मैं हमेशा अपराध–बोध से घिरा रहता था। मेरा अंतर्मन भीतर तक छलनी हो चुका था। काश, चीज़ें कुछ अलग होती। और तब, एक दिन मेरे ज़ेहन में एक ख्याल आया।

वह विचार ऐसा था कि मैं अगले दिन के भी नहीं रुक पाया। क्या मैं पागल हो गया था? नहीं। हमारे घर में यह शब्द ज़बान पर नहीं लाया गया था। इतने बरसों में कभी नहीं। किसी ने किसी को कभी पागल नहीं कहा था। कोई पागल था भी नहीं। या फिर सभी पागल थे। उस दिन मैं नदी के किनारे चला गया। मेरे हाथ में केवल एक कपड़ा था जिसे हिला कर मैं पिता का ध्यान अपनी ओर खींचना चाहता था। मैं अपने पूरे होशोहवास में था। मैं इंतजार करने लगा। आख़िर वे मुझे बहुत दूरी नर नज़र आए। उनकी धुँधली आकृति धीरे–धीरे स्पष्ट दिखने लगी। वे नाव में बैठे हुए थे। मैंने उन्हें बार–बार पुकारा और तब मैंने उनसे वे सब बातें कह डाली जिन्हें कहने के लिए मैं न जाने कब से उतावला था।

मैंने पूरी ताक़त से उन्हें विश्वास दिलाने के स्वर में कहा ... ''पिताजी, अब आप बूढ़े हो रहे हैं। आप बहुत लम्बे अरसे से वहाँ हैं। अब आप लौट आइए। आपने अपने हिस्से का काम कर लिया। अब आप को वहाँ रुकने की कोई ज़रुरत नहीं... आप लौट आइए और आपकी जगह मैं चला जाऊँगा। इसी समय, या जब भी आप चाहें तब। हम दोनों यही चाहते हैं। मैं नाव में आपकी जगह ले लूँगा।'' और जब मैंने यह कहा, मेरा दिल तेज़ी से धड़कने लगा। लेकिन मेरे शब्द मेरे भीतर की सच्चाई और अच्छाई से उपजे हुए थे।

पिता ने मेरी बात सुनी। वे खड़े हो गए। उन्हौंने चप्पुओं के सहारे नाव मेरी ओर मोड़ ली। वे मेरी बात मान गए थे। अचानक मैं भीतर तक काँप गया क्योंकि इतने बरस बाद पहली बार उन्हौंने अपना हाथ उठा कर मेरी ओर हिलाया था और मैं कुछ न कर सका। बस खड़ा रह गया... फिर मैं बेतहाशा भागा। डर के मारे रोंगेटे खड़े हो गए। मैं वहाँ से पागलों की तरह भागता चला गया क्योंकि पिता जैसे क़ब्र से उठ कर आए हुए लग रहे थे ... किसी दूसरी ही दुनिया से। मुझे माफ़ कर दें। माफ़ी माँगता हूँ मैं। केवल माफ़ी।

डर के मारे मेरा पूरा शरीर सर्द पड़ गया था। मैं बीमार हो गया। पिता के भरोसे को इस तरह तोड़ने के बाद क्या मैं इंसान कहला सकता हूँ? इस विफलता के बाद मेरे लिए अब चुप रहना ही बेहतर है। मैं जानता हूँ, अब बहुत देर हो चुकी है। अब पछताने से कुछ नहीं होगा। फिर भी मैं अपने इस सतही जीवन से चिपका हुआ हूँ। आत्महत्या से डरता हूँ। लेकिन अंत में जब मृत्यु आए तो मैं चाहता हूँ कि मुझे एक छोटी–सी नाव में लिटा कर नदी के अनवरत बहते जल में बहा दिया जाए। इसी नदी में जिसके किनारे कभी ख़त्म नही होते। बहते–बहते मैं नदी की अथाह गहराइयों में खो जाऊँ। इस के जल में समा कर नदी का ही हिस्सा बन जाऊँ। हमेशा के लिए।

आलेख

बदलते रिश्ते

डॉ0 भावना शुक्ल
मोतीनगर, नई दिल्ली
मो0 : 09278720311

भारतीय संस्कृति और हमारी सभ्यता के विषय में कहा जाता है यह विश्व में श्रेष्ठतम है। भारतीय संस्कार जिसमें हैं उसे भारत के श्रेष्ठ नागरिक का गौरव प्राप्त होता है। हमारी संस्कृति को हमारे रीति–रिवाजों को विदेशों में लोग बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते हैं तो हमारा भी कर्त्तव्य है हम अपने संस्कारों का सम्मान करें। वास्ताविक रुप में हमें संस्कार हमारे बुजुर्ग से ही प्राप्त होते हैं। कहा जाता है बुजुर्ग तो अनुभव का भंडार है।

यह कटु सत्य है व्यक्ति का जीवन प्रारंभ से लेकर अंत तक अलग–अलग पड़ावों से गुजरता है। मानव का जन्म तो अदृश्य सृष्टा की अनुपम कला–कृति है। बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था आते–आते यदि व्यक्ति स्वस्थ रहे तो बुढ़ापे की कोई समस्या ही न रहे। परंतु ऐसा किसी–किसी का होता है। वृद्धावस्था में व्यक्ति को कोई न कोई समस्या घेरे रहती है, इस कारण सहारे की आवश्यकता अनुभव होती है। यदि पति–पत्नी साथ हैं तो कोई बात नहीं परंतु यदि दोनों में से कोई एक है तो अकेलापन एक अहम् समस्या बनकर सामने आती है और इसके साथ–साथ शारीरिक उर्जा का भी क्षय होने लगता है और वृद्धों के समक्ष आती है सिर्फ असमर्थता। ऐसी स्थिति में बुजुर्गों को अपने बच्चों से अपेक्षा होती है। लेकिन बच्चे उन्हें बोझ समझने लगते हैं और एक समय आता है बच्चे कह देते हैं पिताजी अब आप अपना इंतजाम स्वयं कर लीजिये। यहाँ तक की मकान भी अपने नाम कर उन्हें वृद्धाश्रम का रास्ता दिखा देते हैं।

मन यह सोचने को विवश हो जाता है कि जिन्होंने ऊँगली पकड़कर चलना सिखाया आज एक काबिल इंसान बनाया वे अपने बुजुर्गों की उपेक्षा करते हैं। जिन्हें आज बुजुर्ग की लाठी बनना है। वे आज घर से बेघर करने पर आमादा है।

मैंने स्वयं यह मंजर देखा है कि एक बुजुर्ग किस हाल में पार्क में नजर आये। शाम को मैंने उन्हें एक बेंच पर बैठे देखा था और जब प्रातः काल पार्क में टहलने गये तो वे बेंच पर सो रहे थे। यह देखकर मुझसे रहा नहीं गया और मैंने उन्हें जगाया! फिर पूछा–अंकलजी आप घर नहीं गये।

वे बोले–कौन–सा घर और यह कहकर फूट–फूट कर रोने लगे। बोले–बेटा 70 साल का हो गया हूँ प्रायवेट नौकरी करता था। अब शरीर साथ नहीं दे रहा है। डॉक्टर ने आराम करने को कहा है। लेकिन मेरी बहू मुझे चैन से रहने नहीं देती कहती है– बैठा–बैठा आराम से मुफ्त की रोटियाँ तोड़ रहा है। कहती है बाहर का नहीं तो घर का काम करो, नहीं तो इस घर में कोई जगह नहीं है। बेटा भी बहू की ही भाषा बोलता है। अब बताओ बेटा मैं कहाँ जाऊँ मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। रात तो इसी बेंच पर कट गई।

मैंने कहा– अंकल जी आप चिंता मत करो! मैं आपको वृद्धाश्रम लेकर चलती हूँ । वहाँ पहुँच कर उन्हें अपने जैसे ही लोगों से परिचय हुआ तो उन्हें लगा मेरा दुख कुछ भी नहीं है। ये लोग तो दुख में ही डूबे हुए हैं। यह तो एक बुजुर्ग की आप बीती है। वृद्धाश्रम के अनेक बुजुर्गों की दास्तान तो दर्द से भरी है।

यह बुजुर्गों का दुर्भाग्य है कि अपने ही बच्चे इतने कृतघ्न

कैसे हो गए। क्या कहीं कोई संस्कारों में कोई कमी रह गई है? यह प्रश्न बार–बार मन में कौंधता है। क्या आज की युवा पीढ़ी ने अच्छे संस्कारों को ग्रहण नहीं किया? आज की युवापीढ़ी केवल अकेले ही जीवन जीना चाहती है। बुजुर्गों का हस्ताक्षेप नहीं चाहती। वह परिवार की परिभाषा को नहीं पहचानना चाहती।

पहले के समय की बात कुछ और थी। जहाँ अच्छे संस्कारों की शिक्षा दी जाती थी। बड़े बुजुर्ग ही बच्चों को अच्छी नीति–शिक्षा की कहानियाँ सुनाकर उन्हें संस्कारवान बनाते थे। बुजुर्गों की शिक्षा उन्हें परिवारों से जोड़ने का कार्य करती थी। तब के बच्चों की मन:स्थिति इस प्रकार की हो जाती थी वे अपने बुजुर्गों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

'वसुधैव कुटुम्बकम्'' की अवधारणा खंडित हो चुकी है। एकल परिवार बढ़ रहे है और परिवार में यदि कोई बुजुर्ग हैं तो उसकी उपस्थिति हमें खलने लगती है, व्यक्ति झुर्रीदार चेहरा नहीं देखना चाहता और झुर्रियाँ हाशिये पर चली जाती है।

व्यक्ति समाज में रहता है और यह समाज का कड़वा सच है। जिसे हमें हर हाल में स्वीकारना है। यह सच, अशिक्षितों का नहीं है यह सच है उच्च वर्ग के लोगों का जो समाज को गौरवांवित करते है। जिनसे समाज कहलाता है। वे अपने बुजुर्गों को ससम्मान तब आमंत्रित करते है जब उन्हें उनकी आवश्यकता होती है। जैसे पत्नी गर्भवती है या घर पर बच्चे को संभालने के लिए कोई नहीं है। ऐसी स्थिति में माता–पिता सोचते हैं अरे! मेरा बेटा अपना संस्कार नहीं भूला। उसे माता–पिता की याद आई। हमारे अनुभवों की आवश्यकता है उसे और जब काम निकल जाता है तक वहीं बेटा–बहू कहते हैं आपको यहाँ की आवो–हवा नहीं बर्दाश्त हो रही है आपको आपकी मिट्टी की गंध पुकार रही है आप वहीं जाकर स्वस्थ रहेंगे।

वृद्ध हमेशा नई पीढ़ी को समृद्ध बनाने में जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों की तिलांजलि देकर भावी पीढ़ी के सुख सपनों को सजाने में काफी समय लगाते हैं। पर बदले में उन्हें न मान न सम्मान बस यही कहते हैं यह तो आपका अपना कर्त्तव्य था यह तो हर माँ–पिता करते हैं आपने भी किया।

आज की युवा पीढ़ी को अगर संस्कारवान बनाना है तो बुजुर्गों के संरक्षण की आवश्यकता है क्योंकि बुजुर्ग हमारी अनमोल धरोहर है, वह अनुभव का कोष है। इनके अनुभवों से एक भावी नागरिक का निर्माण होगा तो ऐसी स्थिति में युवा पीढ़ी के लिए यह आवश्यक होगा कि बुजुर्गों को वे उतने ही सम्मान की दृष्टि से देखें, वो सम्मान दे जिस सम्मान के वे हकदार हैं।

प्रश्न यह उठता है अगर बच्चों को अच्छे संस्कार दिये गये हैं तो वे संस्कारहीन आचरण क्यों करने लगते है।

इसका एक कारण है जो भौतिकवादी दृष्किोण से उसका उनपर ज्यादा असर पड़ गया है। आज की शिक्षा ने उन्हें उदार बनने के स्थान पर स्वार्थी बना दिया है और अपने तक सीमित रहने का एक कारण आर्थिक व्यवस्था भी है।

मैं सोचती हूँ कि सारे दबाबों के बावजूद, सारे अभावों के बाबजूद यदि मन भावों से भरा है, संवेदनशील है। तो नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से टकराहट हटाकर तालमेल पैदा कर सकती है। उनके प्रति पूरा सम्मान व्यक्त कर सकती है। शर्त इतनी कि भाव का अभाव न हो।

लोकवाणी

संभाव्य : एक बेहतर पत्रिका

संभाव्य : चिन्तनपरक

डॉ0 अवधेश चन्सौलिया
डी0एम0 242 दीन दयाल नगर
ग्वालियर म0प्र0
मोबाइल नं0 099425187203

आदरणीय सम्पादक जी
सादर नमस्ते

'संभाव्य' के अप्रैल एवं जुलाई 2014 अंक प्राप्त हुए। यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ कि विश्व के 44 एवं स्वदेश के 77 शहरों तक 'संभाव्य' ने अपनी शानदार उपस्थिति दर्ज कर ली है।'संभाव्य' की इस सफलता में निश्चित ही आपके कुशल सम्पादन का योगदान महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में जुड़ा है। आज के स्पर्धा युग में बड़े–बड़े उद्योगपति पत्रिका प्रकाशन के क्षेत्र में धराशायी हो गये।ऐसी विषम स्थिति में बिना पूँजी के आप उसकी निरंतरता बनाये हुए है, यह आपके साहित्यिक जुनून का ही परिणाम है।

दोनो अंकों की सामग्री सुरूचिपूर्ण, महत्वपूर्ण चितनपरक और सामाजिक सरोकारों से लैस है। कविता, कहानी, समीक्षा , गजल, निबंध, लघुकथा, शोधलेख सभी स्तरीय , पठनीय और प्रशंसनीय हैं। पत्रिका की पृष्ठ सज्जा व आवरण भी आकर्षक और कलात्मक हैं।ऐसी सुन्दर पत्रिका के सम्पादन हेतु आपको शतशः नमन।

जागृत पत्रिका

बच्चू चौधरी 'अकेला'

आदरणीय सम्पादक महोदय,
प्रणाम !
सेवा में

सविनय निवेदन यह है कि मैं ने जुलाई अंक 'संभाव्य' पढ़ा , मुझे इसकी एक – एक रचना इतनी अच्छी लगी कि दाबे के साथ इतना तो कह ही सकता हूँ कि ऐसी रचनात्मक जागृत पत्रिका मुझे पढ़ने को शायद कम ही मिली है। इतनी शुद्ध पत्रिका और इसकी सारी रचनाएं हृदय को बडी संकून तसल्ली देती है।

अतः मैं हृदय से 'संभाव्य' परिवार और रचनाकारों को नमन करता हूँ कि हम पाठकों एवं नवीन रचनाकारों की हॉसला आफ़ज़ायी करें

संजय वर्मा 'दृष्टि'
मनावर (धार)
मो0 09893070756

आदरणीय सम्पादक जी,
नमस्कार

'संभाव्य' हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका बेहतर है,इसका श्रेय संपादक एवं प्रबन्धन –मंडल सदस्यों को जाता है। कारण यह है कि विशेषांक हो या समाचार पत्र कुशल संपादन ही इसका प्रतीक है।कई समाचार पत्र /पत्रिकाएँ आज बंद होने की कगार पर है।रचनाकारों का सम्मान और ध्यान सम्पादक रखते हैं इसलिए यह सब हम आज देख रहे हैं। दूरस्थ गाँव में रहनेवाले लेखक सोचते होंगे कि उनकी रचनाएँ क्या छपी होंगी? किन्तु 'संभाव्य' में रचनाएँ छपती हैं और संपादक महोदय द्वारा सभी छपी रचनाओं के साथ पत्रिका भी निःशुल्क रचनाकारों को भिजवाना नहीं भूलते। यही तो श्रेष्ठ कर्मनिष्ठा है। इस कार्य हेतु संपादक महोदय ने रचनाकारों का दिल जीत लिया। हम जीवनपर्यन्त तक आदरणीय संपादक महोदय के आभारी रहेंगे। ईश्वर से कामना करते हैं सम्पादक सबको साहित्यज्ञान एवं शब्दों को स्वरूप प्रदान करने के लिए 'संभाव्य' जैसी पत्रिका का आधार प्रदान किये हैं जिससे नई पीढ़ी के रचनाकार उभरकर सामने आ सके ताकि साहित्य कभी विलुप्त न हो।

लोकवाणी

प्रो0 मृत्युंजय उपाध्याय
धनवाद, झारखंड
मो0 : 9334088307

'संभाव्य' के दो अंक मिले, अप्रैल एवं जुलाई के । धन्यवाद! आभार! भागलपुर साहित्य साधना की दृष्टि से उर्वरा भुमि है।वहाँ की संभावानाओं की आप भरपूर तलाश कर रहे हैं आप अप्रैल
2014 अंक में रंजना जी की 'मैं औरत हूँ' में नारी की मनोवैज्ञानिकता , प्रतिबद्धता स्पष्टतया दिखती है एवं समर्पण एकात्मकता और निर्भिकता भी परिलक्षित होती है।शाकीर भाई की पैनी नजर मानवता को बचाने हमें सावधान कर रही है।'आवरण' में आँचलिकता के सारे सांस्कृति– लोक–रिवाजें व्यंजित एवं निरूपित है। डॉ0 प्रतिभा राजहंस की एक आँचलिक कहानी जो प्रतिमान सिद्ध हुई है।जुलाई अंक में डॉ0 बहादुर मिश्र जो निराला साहित्य के पंडित हैं उन्होंनें उनके काव्य– विकास पर शोधपरक दृष्टि डाली है।उनका मानना है कि निराला काव्य को तीन चरणों में बाँटी जा सकती है। प्रथमतः 1920–1938 तक जिसमें अनामिका, परिमल ,गीतिका एवं तुलसीदास की गणना होती है। द्वितीय चरण 1939–1948 में कुकुर्मुत्ता ,अनिमा, बेला और नये पत्ते तथा तृतीय चरण 1950–1961 अर्चना, अराधना, गीतगुंज और सांध्यकावली। नाज ने 'आम आदमी' में सामान्य जन के दु:ख–दर्द सीमाओं को अनावृत किया है तो कवयित्री मंजुला ने अति संक्षेप में गृष्म की पंचाग्नि की उष्णता को व्यंजित किया है।सभी लेखक ,कवि एवं रचनाकार साधुवाद के अधिकारी हैं।

संपादक मंडल बधाई के सच्चे पात्र है।
सधन्यवाद!

मानवीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में संभाव्य

राजू प्र0 कुसुम
मो0 9386178889
नाथनगर, भागलपुर (बिहार)

सम्पादक महोदय

सेवा में

'संभाव्य' (हिंदी त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका) पढ़कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई।ऐसा प्रतीत होता है कि श्रेष्ठ चिंतन एवं सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से मानवीय चेतना जागृत करना इस पत्रिका की मुख्य अवधारणा है। यही कारण है कि 'संभाव्य' में प्रकाशित रचनाएँ मानवीय संवेदनाओं को ऊजागर करती है, जो किसी जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय की बन्दी नहीं, किसी रुढ़ि की अनुगामिनी नहीं, बल्कि इन सबसे ऊपर उठकर स्वध्यायपूर्वक चिंतन करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

मूर्दा है– वह समाज, वह राष्ट्र जहाँ साहित्य को जीवित रखने का काम नहीं होता। साहित्य , समाज और राष्ट्र को जीवंत संरक्षण प्रदान करने तथा विश्वग्राम में मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठापित करने की दृष्टि से संभाव्य के समस्त रचनाकार साधुवाद के पात्र हैं।

'संभाव्य–दिवस' के पावन अवसर पर संपूर्ण संभाव्य–परिवार को मैं धन्यवाद देता हूँ। जिनके स्तुत्य प्रयास से यह पत्रिका विकास –शिखर की ओर अग्रसर होती जा रही है। मैं इसके मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ।

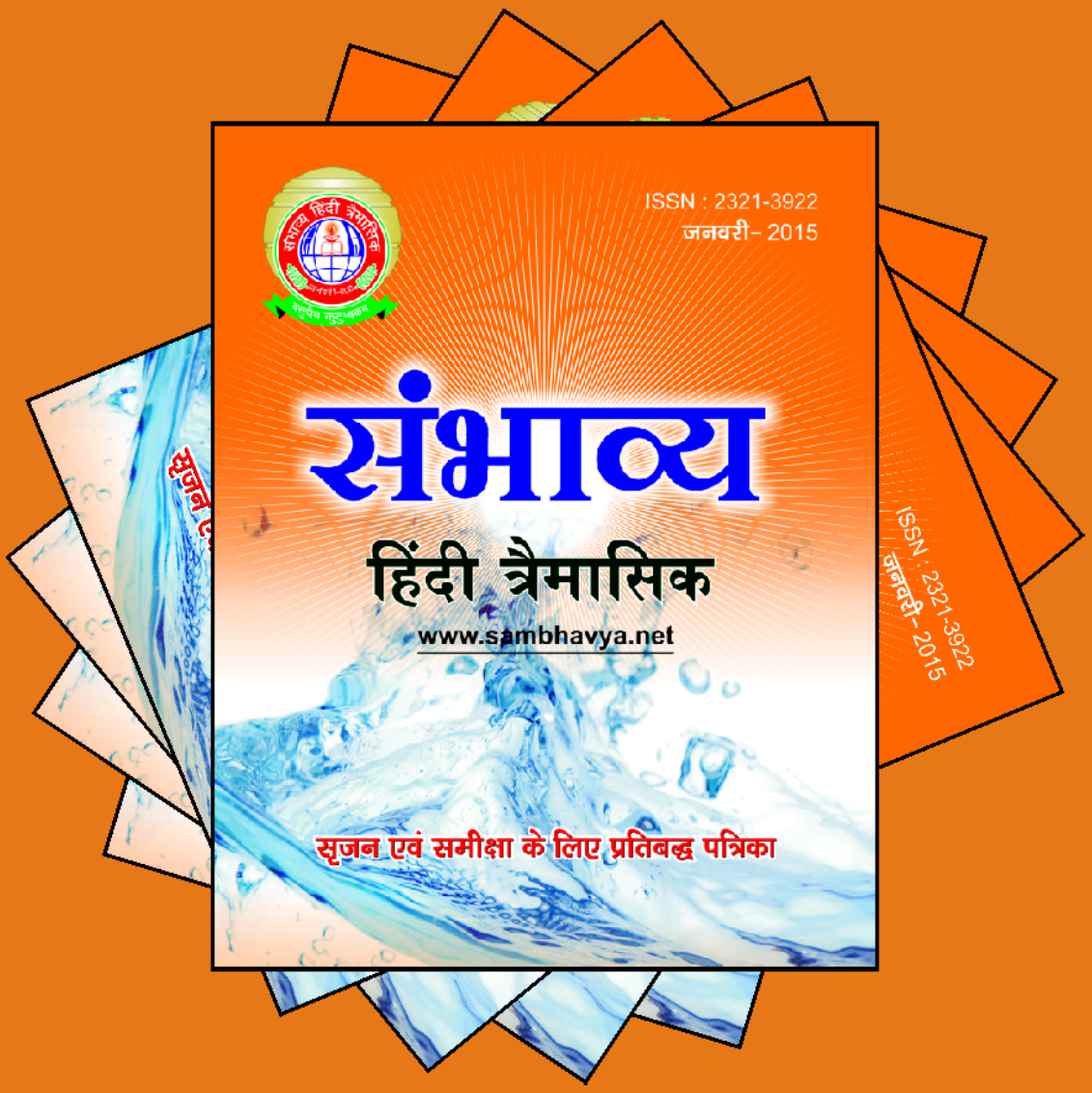

www.sambhavya.net

संभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर